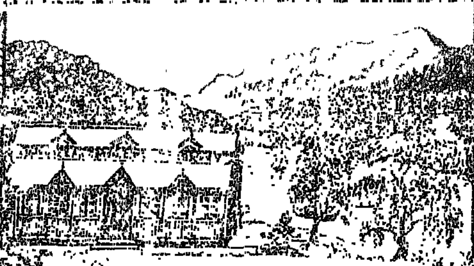




ललिता

(ग्राम्य जीवन-संबंधी, शिक्षाप्रद उपन्यास)

लेखक

लाला रामजीदास वैश्य

एफ़० आर० एस्०, ए०, एफ़० आई० एफ़० एस्० सी०,

एम्० आर० ए० एस्० (लंदन)

मिलने का पता—

भारती (भाषा)-भवन

चर्खेवालाँ, दिल्ली

प्रथमावृत्ति] १९५६ [मूल्य १)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. भारती-(भाषा-भवन, चर्खेवालाँ, दिल्ली
२. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना
३. सुधा-प्रकाशन, भारत-आश्रम, राजा-बाजार, लखनऊ
४. वेस्टर्न बुकडिपो, रेज़िडेंसी रोड, नागपुर—१

नोट—इनके अलावा हमारी सब पुस्तकें भारत-भर के सब प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें। हम उनके यहाँ भी मिलने का प्रबंध करेंगे। हिंदी-सेवा में हमारा हाथ बँटाइए।

मुद्रक
पियरसंस-प्रेस
४, फ़ैज़ बाज़ार
दिल्ली

समर्पण

कविरत्न श्री पं० दुलारेलालजी भार्गव

प्रिय पंडितजी,

आपकी हिंदी के प्रति अनन्य सेवा तथा आपकी माधुर्य से भरी, सरस कविताओं से मुग्ध होकर मैं अपनी इस 'तुच्छ भेंट' को, आपके जन्म-दिवस पर, आपके कर-कमलों में समर्पित करता हूँ।

आशा है, जिस प्रेम-भाव से मैंने इसे अर्पण किया है, उसी भाव से आप भी इसे अपनाएँगे।

'स्वीट-कॉटेज'
लश्कर, ग्वालियर

भवदीय
रामजीदास वैश्य

नम्र निवेदन

१. भारती-भाषा

हम कोई ४० वर्ष से भारतीय भाइयों से साग्रह अनुरोध कर रहे हैं कि अपने देश को इंडिया, हिंद या हिंदुस्थान न कहकर, राष्ट्रभाषा के साहित्य की पुष्टि–प्रगति और प्रचार-प्रसार के इस युग में 'भारत' कहना चाहिये, और राष्ट्रभाषा का नाम उसी के अनुसार 'भारती' होना चाहिए।

२. भारती (भाषा)-परिषद्

स्वराज्य-प्राप्ति के अनंतर हमने अपने देश का नाम तो भारत स्वीकार कर लिया है पर राष्ट्रभाषा के लिये 'हिंदी' शब्द का ही प्रयोग अभी हो रहा है। प्रायः सभी देशों की भाषाओं का नाम उन देशों के नामों पर ही रक्खा जाता है– जैसे फ्रांस से फ्रेंच, रशिया से रशियन, इँगलैंड से इँगलिश। अतः जब तक हमारी सरकार 'भारती'-शब्द का प्रयोग हिंदी के लिये न करे, तब तक हमें ही इसका प्रयोग करना चाहिए। इस संबंध में हमारी पुस्तिका 'भारती भाषा की पुष्टि-प्रगति और प्रचार-प्रसार' की योजना मँगवाकर प्रत्येक हिंदी-प्रेमी को शहर, नगर और क़स्बे में भारती-भाषा परिषद् खोलकर भारती-भाषा का भंडार भरने में हमारा हाथ बँटाना चाहिए।

३. भारती (भाषा)-भक्त

हमने जब गंगा-पुस्तकमाला का संपादन और प्रकाशन १९१७ में प्रारंभ किया था, तब लखनऊ और दिल्ली में उर्दू का बोलबाला

था। सारे भारत में ५० लाख के लगभग ही हिंदी-पढ़े-लिखे व्यक्ति थे। पर आज साहित्य-सेवकों के श्रम, शिक्षा के प्रसार और जन-संख्या की निरंतर वृद्धि के कारण १५ करोड़ हिंदी बोलनेवालों में २ करोड़ अपनी भाषा पढ़-लिख सकते हैं, और बाक़ी अहिंदी भाषा-भाषी २१,००,००,००० व्यक्ति भी राष्ट्रभाषा सीख रहे हैं।

इधर जन-संख्या और भी बढ़ती जा रही है। अनुमान है, आगामी १५ वर्ष में भारत की जन-संख्या ५०,००,००,००० हो जायगी, और उसमें से ५० प्रतिशत अर्थात् २५ करोड़ जनता हिंदी-पढ़-लिख जायगी, क्योंकि अहिंदी प्रांतों में भी उसका प्रचार हो रहा है।

इस तरह हमारा अनुमान है, भारती-भाषा (अर्थात् हिंदी) का प्रयोग २ करोड़ की जगह २५ करोड़ जन करने लगेंगे।

जहाँ १९१७ में हिंदी पढ़ने वाले ५० लाख व्यक्ति ही थे, वहाँ सन् १९६७ में २५ करोड़ जन हिंदी पढ़ने लगेंगे

पर इस वृद्धिंगत भारती-भाषा-भक्त जनता के लिये पुस्तकें भी सुलभ होनी चाहिए। तभी तो वे उन्हें पढ़ सकेंगे। संसार का जो सारा ज्ञान पुस्तकों में है, उससे लाभ उठा सकेंगे।

४. भारती-लाइब्रेरियाँ

अतः ज्ञान की प्यासी जनता के लाभ के लिये हर जगह—शहर, नगर, कस्बे और गांव में भारती-लाइब्रेरियाँ खुलनी चाहिए। जगह-जगह मुहल्लों में सार्वजनिक मुहल्ला-लाइब्रेरियाँ और घरों में घरेलू लाइब्रेरियाँ खुल जानी चाहिए। इस संबंध में हमारी '१ लाख लाइ-ब्रेरियाँ खुलवाइए' शीर्षक योजना मंगवा लीजिए, और खुद भी लाइब्रेरी-संस्थापक बन जाइए, और अपने इष्ट-मित्रों को भी बनाइए। अपने कस्बे या मोहल्ले में सार्वजनिक पुस्तकालय खोलें। हर २५-५० हजार जनता के लिये सार्वजनिक पुस्तकालय ५,००) से खुलना

चाहिए। सरकार से भी इसमें मदद ली जा सकती है। घरेलू पुस्तकालय तो प्रति वर्ष ६) ख़र्च करके ही खोला जा सकता है।

५. भारती-ग्रंथागार

भारती-भाषा-प्रेमी जनता के लिये दूसरी आवश्यकता है नगर-नगर में ग्रंथागार खोलने की व्यवस्था। रईस और मध्यम श्रेणी के व्यक्ति किताबें खरीदकर पढ़ना चाहते हैं। उपयोगी और उत्कृष्ट साहित्य जनता भी पढ़ना चाहती है। हमने सैंकड़ों ऐसी किताबें छापी हैं, पर ये किताबें हिंदी-पुस्तकों के विक्रेताओं के पास मिलती नहीं, उनकी पूँजी थोड़ी है, अतः रईस व्यक्तियों को इन विक्रेताओं की पूँजी से मदद करनी चाहिए या स्वयं ग्रंथागार खोलने चाहिए। भारतवर्ष के इन प्रधान नगरों में या जहाँ खोलना चाहें, हिंदी-प्रेमी, संपन्न सज्जन ग्रंथागार स्थापित करें। हम उन्हें पूरा सहयोग देंगे, जिसमें वे भाषा-प्रचार का यश तो लूटेंगे ही, उन्हें आर्थिक लाभ भी होगा। नीचे लिखे शहरों में हिंदी-दूकानें खुल जानी चाहिए, जहाँ भारत-भर के प्रकाशकों की पुस्तकें प्रकाशकों के मूल्य पर ही सुलभ हों—

दिल्ली, लखनऊ, प्रयाग, काशी, जयपुर, ग्वालियर, पटना, इंदौर, नागपुर, कलकत्ता, बंबई, अमृतसर, जालंधर, चंडीगढ़, बीकानेर, जोधपुर, अजमेर, उदयपुर, कोटा, भूपाल, नागपुर, जबलपुर, हैदराबाद, मद्रास, अहमदाबाद, कानपुर, आगरा, मेरठ, झाँसी, बरेली, भागलपुर, राँची, गया, मुज़फ्फरपुर, मुरादाबाद, रीवाँ, जमशेदपुर, उज्जैन, भूपाल, अहमदाबाद, आदि-आदि।

६. भारती(भाषा)-भक्त पूंजीपतियों से प्रार्थना

डाक-व्यय बढ़ जाने के कारण भी प्रकाशकों से सीधे पुस्तकें लोग नहीं मँगाते। यदि पुस्तकें पास में हों, तो लोग देखकर ले

लेते हैं, डाक-व्यय भी उनका बच जाता है। अतः जो भी व्यक्ति १,०००) या अधिक रुपया लगा सकें, वे इस 'भारती'-प्रचार-यज्ञ में योग दे सकते हैं। बड़े पूंजीपति इसमें लाखों रुपए लगा सकते हैं। वे अपने स्थान के दूकानदारों, बुकसेलरों के साथ या हमारे सहयोग से ग्रंथागार खोल सकते हैं। उनको १२% प्रति वर्ष लाभ की हम गारंटी देंगे। आजकल इतना लाभ व्यापार में नहीं होता। इस संबंध में हमारी 'विशेष वितरकों के लिये योजना' मँगा लीजिए, और उस पर विचार कीजिए।

७. भारती-सेवक आर्गनाइजरों की आवश्यकता

हमें उपर्युक्त नगरों में ऐसे आर्गनाइज़रों (संगठन-कर्ताओं) की आवश्यकता है, जो स्थानीय बुकसेलरों और पूँजीपतियों के सहयोग से इस निराली योजना को सफल बना सकें। उन्हें उचित वेतन और कमीशन दिया जायगा। पढ़े-लिखे, तेज़ नवयुवकों और रिटायर्ड, स्वस्थ सज्जनों को, जिन्हें काम की आवश्यकता हो, हमसे हमारी ये योजनाएं मँगाकर फौरन इस काम में लग जाना चाहिए।

८. ललिता

श्रीयुत रामजीदासजी वैश्य हिंद के प्रसिद्ध लेखक हैं। बहुत दिनों से आप साहित्य-सेवा करते रहे। उनका हिंदी-प्रेम और हिंदी-सेवा के प्रति उत्साह सराहनीय था। वह सदा हिंदी-उन्नति के कार्यों में तन-मन-धन से योग देते थे। उनका यह उपन्यास हिंदी-संसार को अवश्य पसंद आएगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

गंगा-पुस्तकमाला, लखनऊ
भारती-(भाषा)-भवन, दिल्ली } भारती-(भाषा)-भक्त—
दुलारेलाल

निवेदन

प्रिय पाठकगण !

बहुत वर्ष हुए, जब मैंने 'फूल में काँटा' और 'धोखे की टट्टी' नामक कहानियाँ आपकी सेवा में उपस्थित की थीं, और आपने उन्हें अपनाया भी था।

संसार-चक्र के अनुसार मेरे भी जीवन में कई परिवर्तन हुए। यद्यपि मैं अन्य पुस्तकें लिखता रहा, और कहानी लिखना एक प्रकार से छूट ही-सा गया था। परंतु, कुछ वर्ष हुए, जब श्रीयुत बैरिस्टर विनायक-रावजी पँवार यहाँ के 'जयाजी-प्रताप'-पत्र के संपादक नियुक्त हुए, और उन्होंने मुझे फिर कहानी लिखने को प्रेरित किया, तब, उनके आग्रह पर, मैंने 'सच्चो झूठ' नाम की एक छोटी-सी कहानी लिखकर उन्हें दी। उसका भी आपकी ओर से आदर हुआ।

इससे तो मुझे उत्तेजना मिली ही, पर मेरे मित्रों ने भी मुझसे और कुछ लिखने के लिये अनुरोध किया। इसीलिये अन्य कार्यों के बंधन में बँधे रहने पर भी जो अवकाश निकाल सका, उसमें इस ललिता-नामक पुस्तक को आपके सम्मुख उपस्थित करने का साहस किया है।

यदि आपने इसके प्रति सहानुभूति प्रकट की, तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

'स्वीट-कॉटेज'
लश्कर, ग्वालियर

भवदीय
रामजीदास वैश्य

ललिता

(१)

पर न किसी की दशा एक सी नित रहती है ;
पछुवा-पुरवा हवा बदलती ही बहती है ।

—विजयानंद त्रिपाठी

"गुइयाँ, क्या आज घर में ही घुसी रहोगी ? पहर-भर से हम सब तुम्हारे लिए अथाई पर बैठे-बैठे उकता रहे हैं, पर लल्लोजी का घर से निकलना ही नहीं होता।" एक बारह-तेरह वर्ष की बालिका ने एक छोटी-सी कुटिया के भीतर घुसकर पौर पर से ही कहा।

"आ रज्जो, भीतर आ।" कहकर कुटिया के भीतर से एक सुंदर किशोरी ने, जो उपर्युक्त बालिका से उम्र में दो-तीन बरस बड़ी मालूम होती है, उत्तर दिया—"मैं तो बड़ी देर से आने को तैयार थी। देवी भैया अभी खेत से नहीं लौटे, उनकी बाट देख रही थी। कक्का को ज़रा बुख़ार आ गया था, इसलिए रोटी परोसने को ठहरी हूँ।"

"वह तो हमारे लिये नीम के पेड़ पर झूला डाल रहे हैं।" पहली बालिका ने खड़े-ही-खड़े कहा।

इतने ही में एक १८-२० वर्ष का नौजवान लड़का भीतर घुसा और उस बालिका के गले पर हाथ रखकर कहने लगा—"क्यों री रज्जो, बहना से क्या बातें भिड़ा रही है ?" और फिर किशोरी की

तरफ़ देखकर बोला—"लल्लो, कक्का की तबियत कैसी है?" जब देखा कि उसकी भौंहें ज़रा तनी हुई हैं, तो धीमी आवाज़ में बोला—"तेरी सौं बहना, मैं तो बड़े वेग से आया था। इन मोड़िन ने घेरकर मुझे झूला डालने को पेड़ पर चढ़ा दिया।"

किशोरी ने मधुर स्वर में उत्तर दिया—"कोई बात नहीं भैया, मैं तो जितनी देर चाहे बैठी रहती, पर कक्का का ख़याल था। उनसे जब दूध पीने को पूछा, तो कहने लगे कि देवी आएगा, तब पिएँगे। बस, इसी पर ज़रा बुरा लगा कि तुम्हारी वजह से उन बेचारे रोगी को भी भूखा रहना पड़ा। चलो, अब देर न करो। चौके में आओ, तुम्हें रोटी परोस देती हूँ। फिर जाकर कक्का को दूध दे आऊँ।"

"अच्छा लल्लो, तो हम जाकर झूला तैयार करती हैं, तुम झट से रोटी खाकर, आ जाओ।" कहकर पहली बालिका दौड़ती हुई बाहर भाग गई।

'तरनतारन' नाम का एक छोटा-सा गाँव लखनऊ के पास है। नवलसिंह मेहते और उनकी कुटी यहाँ अच्छी तरह विख्यात है। इन्होंने युवावस्था में बड़े-बड़े शहरों में नौकरी की, यहाँ तक कि अपने मालिक के साथ विलायत तक का सपाटा भी मार आए। दस-पंद्रह बरस से अपने गाँव वापस आकर, अपनी कुटिया में फिर निवास करने लगे हैं। अभी पाँच-छः वर्ष हुए, स्त्री का देहांत हो चुका है। इनकी गृहस्थी में केवल जवान बेटा देवीसिंह और लड़की ललिता रह गए हैं। आजकल खेती-पाती से इन सबका जीवन-निर्वाह होता है। खेती ख़ुद नहीं करते, मज़दूरों से कराते हैं। नवलसिंह ने तो जन्म-भर नौकरी की, इसलिए खेती के काम से अनजान रहे। देवीसिंह को कभी खाने की कमी न रही, इसलिये कमाने की या खेती-पाती की कभी सूझती ही क्यों? जब पिता बाहर नौकरी करते थे, महीने-के-महीने मनीआर्डर से रुपया आ जाता था। खेती से अनाज आ जाता, रुपयों से और ख़र्च चलते। इस तरह मा के लाड़लो

बेटे की तरह खेल-कूद में वक़्त काटते, कसरत करते और चैन की बंसी बजाते। हाँ, मा ने गाँव के मास्टर के पास इन्हें पढ़ने को ज़रूर बैठा दिया था।

बाप के नौकरी से वापस आने पर इन्हें ज़रा हाथ-पाँव हिलाने पड़े। पढ़ने में भी ज़्यादा सर खपाना पड़ा। पर खेलने को एक छोटी-सी बच्ची, जिसे बाप परदेश से अपने साथ ले आए थे, मिल गई थी। इनकी मा, सरस्वती इस गोद की बच्ची का ख़ुद पालन-पोषण करती थी।

गाँव के पुजारी की एक लड़की, जो परदेश में ब्याही थी, और विधवा होने पर, अब बाप के यहाँ ही रहने लगी थी, पढ़ी-लिखी थी। मेहतेजी ने, जब ललिता ९ वर्ष की हो गई, इसी को घर आकर पढ़ाने के लिए नियत किया। ललिता बचपन से ही पढ़ने में बड़ा मन लगाने लगी, और बारह वर्ष की होते-होते तो वह अच्छा पढ़ लिख गई। दिया-बत्ती के बाद जब वह रामायण की कथा पढ़कर सुनाती, और गाँववाले उसका मुँह ताकते रह जाते, तब मेहतेजी का हृदय आनंद से गद्गद हो उठता।

इस प्रकार नवलसिंह अपनी इस गाँव की कुटी में सुख से जीवन बिताने लगे। गाँव की चौपाल में बैठकर जब वह बड़े-बड़े शहरों के अपने अनुभवों की बातें करते, और समुद्र-यात्रा तथा विलायत के गोरे-गोरियों की कहानी सुनाते, गाँववाले ऐसे दत्तचित्त हो सुनते, मानो किसी ने मंत्र पढ़कर सबको अपने वश में कर लिया हो।

एक बार एक तो पूछ ही बैठा—"काहे भैया मेहते! तुमने जादू सीखा है? तभी तुम इनमें से जीते-जागते निकल आए!"

गाँव में नवलसिंह मुखिया और बड़े आदमी गिने जाने लगे। इनका रोब इतना छा गया था कि किसी गाँववाले की यह हिम्मत न पड़ी कि इनसे पूछे—"यह छोटी-सी बिटिया क्या आसमान से आकर आपके यहाँ पैदा हो गई?" धीरे-धीरे जैसे-जैसे लड़की की उम्र

बढ़ती गई, लोगों के ध्यान से बात उतरती चली गई, और सब-के-सब उसे मेहतेजी की ही पुत्री कहने लगे।

जैसे लक्ष्मी चंचल होकर कभी किसी के यहाँ जमकर नहीं ठहरती, वैसे ही भगवान् भी सदा किसी को सुख से नहीं बैठने देते। लोग कहते हैं, जैसे जिसके कर्म होते हैं, संसार में उसे वैसे ही फल भोगने पड़ते हैं; पर जब सीधे, सच्चे और अच्छे आचरण वाले को भी कष्ट उठाते देखते हैं, तब उसके दुःखों को उसके पिछले पाप-कर्मों के मत्थे मढ़ते हैं, कहते हैं—"भाई, जा जनम में तो इसने कोऊ काम बुरो नहीं करो, पिछले जनम के भोग भोग रहो है।"

कुछ भी हो, यही देखा गया है कि जैसे धूप के बाद छाँह अवश्य आती है, वैसे ही मनुष्य के जीवन में सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख आकर ही रहता है। इसी पर कहावत है कि 'सदा किसी के दिन एक-से नहीं बीतते।'

प्रकृति के इस नियम के फल-स्वरूप, मेहतेजी के दिन भी फिरने लगे। थोड़ी-सी बीमारी उठाकर ही इनकी स्त्री संसार से चल बसी। मरते समय उसने अपने पति का हाथ पकड़कर कहा था—"देखो जी, मेरी बेटी लल्लो को किसी बात का दुःख न होने देना।" फिर बेटे का हाथ पकड़कर बोली—"देख रे देवी, अपनी बहना को खूब राज़ी रखियो।"

ललिता तो यही समझी कि मेरी मा मुझसे अब बिदा हुई। कई दिन खूब रोई-पीटी। खाना भी न खाया। सबके समझाने-बुझाने और अपने मन में यह विचार कर कि बाप को एक तो मेरी मा के मरने का ही दुःख है, मेरे इस प्रकार शोक से और भी अधिक कष्ट पहुँचेगा, रोना-धोना तो छोड़ दिया, पर चिंतित बहुत समय तक बनी रही। मा के मरने के उपरांत घरके काम-काज का सारा भार इसने अपने ऊपर ले लिया। बहुत सुबह ही उठकर झाड़ू-बुहारी देकर स्नान करती, तुलसी पर जल चढ़ाती, सूर्य भगवान् की आराधना करती, और

फिर रसोई चढ़ाकर भोजन बनाती। भोजन के बाद कोई सखी-सहेली आकर ज़िद करती, तो खेलने जाती, अन्यथा चरखे से सूत कातती।

देवीसिंहजी की उन्मत्तता में भी कमी आ गई। सुबह ही पानी भरकर ले जाने लगे। पढ़ने में मन लगाने लगे और खेत पर जाकर मज़दूरों की देख-भाल भी करने लगे।

बरस-दो-बरस में मेहतेजी की गृहस्थी फिर वैसे चलने लगी। पिछले सब दुःख भूल गए। जब कभी ललिता या देवी अपने पिता से मा की कोई चर्चा कर बैठते, तो बेचारे उनके सामने तो बात टाल देते, पर अकेले में जाकर आँसू बहा आया करते। इसी तरह मेहतेजी का संसार चल रहा था। जिस समय की बात हम कर रहे हैं, तब पिछली बातों की याद करके रंज से या पास की पूंजी निबट जाने या उम्र के ढलाव से मेहतेजी पर बुढ़ापा झलकने लगा था। कभी खांसी और कभी बुख़ार आकर इन्हें दबा लिया करता। पर इतने पर भी इन्होंने हार न मानी, वक़्त पड़ने पर सबके काम आते थे। अब भी वैसे ही चौपाल में बैठक जमती, और गाँव के सभी लोग इनका वैसा ही आदर करते थे।

* * * *

(२)

सीधे-सादे, भोले-भाले, हैं ग्रामीण मनुष्य निराले;
एक दूसरे की ममता है, सबमें प्रेममयी समता है।

—मैथिलीशरण गुप्त

श्रावण का महीना। चारों तरफ़ बादल घिरे हैं। किसान और मज़दूर अपने-अपने खेतों में हल लिए ज़मीन जोतने में जुटे हैं। बैलों

को हाँकते-हाँकते कोई मनचला पट्ठा बेसुरा राग भी अलापने लगता है। पेड़ों पर हरियाली छाई हुई है, जिन पर तरह-तरह के पक्षी चहचहाकर अपना मनोरंजन कर रहे हैं। गाँव के बौहरेजी भी, जांघ तक धोती चढ़ाए, बाहर पत्थर के चबूतरे पर बैठकर खेतों की तरफ़ ललचाई हुई आँखों से देख रहे हैं, और मन-ही-मन हरएक किसान का हिसाब लगाकर गुनताड़ा लगा रहे हैं कि अच्छी उपज होने पर वह अपना रुपया ब्याज-पर-ब्याज-सहित चुका लेंगे या नहीं।

स्त्रियाँ पाटोरों पर जो ईंधन-कंडा रक्खा है, या जो चीज़ भी सूखने को रक्खी है, उसकी सटोर बटोर में लगी हुई हैं, कहीं पानी से भीगकर ख़राब न हो जायँ। छोटे-छोटे बच्चे लँगोटी लगाए, दौड़-दौड़कर 'बरसो राम धड़ाके से' की गूंज से गाँव-भर को सिर पर उठाए हुए हैं। लड़कियों और नवयुवकों ने पेड़ के नीचे इकट्ठे हो, बारी-बारी से झूले पर झूलने और अपने मधुर कंठ से 'सावन' गाने की ठान रक्खी है। इतने ही में उस जमघट में से एक संकेत कर चिल्ला उठी—"लो, वह लल्लो भी आ गई।" देखते-देखते, पैर से सिर तक रूप में लथ-पथ, एक सफ़ेद धोती पहने, धीमी मंथरगति से, मुस्किराती हुई लल्लो आ खड़ी हुई। लल्लो हमारी ललिताकुंवरि का प्यार का नाम है।

सब-की-सब बालिकाओं ने उसका प्रेम से स्वागत किया, मानो कोई रानी अपने प्रजा-समूह में अचानक आ गई हो। जो झूल रही थीं, वे झूले पर से उतर पड़ीं, "लो, लल्लो, तुम झूलो।" सभी ने अनुरोध किया। रज्जो, जो उसकी प्रिय सहेली मालूम पड़ती है, भीड़ से निकल, इसके पास आ धमकी, और हाथ खींचकर झूले की ओर ले जाने लगी। वह भी सकुचाती हुई उसके साथ खिसकती गई और कहती गई—"नहीं, रज्जो, पहले और गुइयांओं को झूल लेने दे। हम-तुम तब तक झोंटे दें।"

"चलो, बस रहने दो; पहर-भर से तो बाट जोह रहे हैं, सब तो

सूरत दिखाई, और अब नख़रे बघारने चली हैं। यों ही सरम की बल्लो बनना था, तो पहले ही नाहीं कर देतीं। हम भूल न लेतीं, तुम्हारे लिये बैठी क्यों रहतीं।" रज्जो ने बिगड़ कर कहा।

रज्जो की यह लताड़ खाने पर ललिता को अब और 'नहीं' करने की हिम्मत न पड़ी, तुरंत भीगी बिल्ली की तरह जाकर रज्जो के साथ झूले पर बैठ गई। बाकी सारी बालिकाएँ झुंड बाँधकर झूले के चारों ओर खड़ी हो गईं।

रज्जो लड़की क्या, बिजली थी। झूले पर सवार होते ही चिल्ला चिल्ला कर गाना शुरू कर दिया—

नान्ही-नान्ही बुंदियाँ बरस गयो मेहा,
अंगना में हो गई कीच।

चाहे कोई साथ दे या न दे, कोई पसंद करे या न करे, उसे अपने चीखने से मतलब। कहावत है—'जाकी लाठी, ताकी भैंस।' या तो इसलिये कि यह सबसे ज़्यादा ऊधमी और तेज़ थी, या यह कि ललिता की प्यारी होने के कारण इसका भी सब स्नेह-पूर्ण आदर करती थीं। कुछ भी हो, वह अपनी बात चलाकर रही। सब ने स्वेच्छा से या दब्बूपन से उसकी लय में लय मिलाई। ललिता भी हँसती हुई इसका साथ देती जाती थी। गीत पूरा भी न होने पाया था कि उसने झूला रोक, मुँह बिगाड़ ललिता से कहा—"बड़ी आईं कहीं की गानेवाली! देखो, मुँह बनाकर कैसी मेरी हँसी करती हैं, और मेरी नक़ल बनाती हैं। मानो दुनिया में सिवा इनके किसी को गाना आता ही नहीं। अब मैं तुम्हारे साथ कभी नहीं झूलूंगी। बस, मैं तो उतरती हूँ।"

ललिता ने हाथ पकड़कर रोक लिया,—"कौन कहता है, तुझे गाना नहीं आता? तू तो ऐसा अच्छा गा रही थी, जैसे कोयल कूकती हो। तूने कहीं ससुराल जाकर ऐसा गाया न, तो पड़ोसिनें

तो क्या, सास-ननद भी तुझ पर लट्टू हो जायँगी। जीजा बेचारे की तो जाने क्या दशा हो!"

रज्जो ने फिर भौंहें तानकर कहा—"बस, बस जी, पहले मेरी हँसी उड़ाई, और अब छेड़खानी करके मुझे लजाना चाहती हो। तुम कुछ भी कहो, मैं चुप होनेवाली नहीं। मेरे पहले तो देवी भैया का ब्याह होगा। देखो, मैं भौजी से तुम्हें कैसे ठिकाने लगवाती हूँ कि नानी-दादी याद आ जाँय। सारा मटकना-चटकना भूल जाओ।" सबने 'बस लच्छमी, रहने दे।" कहकर रज्जो का मुँह बंद किया, और ललिता से गीत आरंभ करने को कहा। ललिता ने धीमे स्वर से गीत आरंभ किया—

मेरे आँगना में बंसी बजा, खिलौना मैं दूंगी।
खेलन को दूंगी चकई भंवरवा, झुनझुनां मैं ले दूंगी बजाय।
खिलौना०
माखन-मिसरिया खाने को दूंगी, दुधवा मैं दूंगी पिलाय।
खिलौना०
राधे-मोहन के ब्याह करूंगी, तुलसी मैं दूंगी चढ़ाय। खिलौना०

गीत ऐसा भाव-पूर्ण था, और ऐसे मधुर स्वर से गाया था कि सारा समूह प्रशंसा और प्रेम से आह्लादित, बेसुध-सा हो गया।

मेहतेजी का बुख़ार भी अभी-अभी उतरा था। उन्होंने भी पौर से निकलते-निकलते इस मधुर गान को सुना। वह इस गीत को ललिता के मुँह से सुन, मुग्ध हो गए और यह कहते हुए "ललिता, सब तुम्हें मेरी बेटी कहते हैं, पर असल में तुम मेरी देवी—मेरी माता हो, यह कौन जानता है, धन्य परमेश्वर! तुम धन्य हो!" वहीं एक टूटी चारपाई पर बैठ, मन-ही-मन, आँखें बंद कर कुछ सोचने लगे। ध्यान आया कि ललिता अब जवान हो गई है, इसके ब्याह की फ़िक्र

करनी चाहिए। पुरानी घटनाएँ स्मरण हो आईं, जिससे माथा चक्कर खाने लगा। ललिता कौन है? क्या इस ललिता का ब्याह गाँव के किसी गंवार लड़के के साथ करूँगा? फिर ललिता के योग्य वर कहाँ से लाऊँ? मैं कौन हूँ? मेरी हैसियत क्या है? फिर किया क्या जाय? परमेश्वर, आपने बहुतों के डूबते हुए बेड़े पार लगाए, मेरे इस बेड़े को पार लगाना भी आपके ही हाथ है! यही सोचते-सोचते आँख खुलीं; देखा, ललिता और सारी बालिकाएँ आकर चारपाई घेरे खड़ी हैं। इनके आँख खोलते ही ललिता गले से चिपट गई, और कहने लगी—"कक्का, क्या हुआ? बेहोश कैसे हो गए थे? बुख़ार तो अब मालूम नहीं होता।"

मेहतेजी ने आश्वासन देकर कहा—"कुछ नहीं बेटी, बुख़ार बड़ी देर हुई उतर गया, यों ही आँखें बंद करने में ज़रा चैन-सा मालूम पड़ा था। तुमने अपना झूलना क्यों बंद कर दिया?"

रज्जो बोल उठी—"कक्काजी! बहना ने तुम्हें दूर से ऐसे बैठे देखा, तो घबरा गई, कहने लगी—'कक्का बेहोश हो गए।' तभी हम सब यहाँ दौड़ आईं। कक्का, तुमने आँखमिचौनी खेलने को तो आँखें बंद नहीं कर ली थीं! फिर आँखें बंद करो, हम खेलेंगे तुम्हारे साथ आँखमिचौनी!"

वह इतना ही कहने पाई थी कि हाथी की तरह झूमता हुआ देवीसिंह वहाँ आ पहुँचा, और बीच ही में बात काटकर बोला—"रज्जो, ठहर, मैं अभी तुझे कक्का के साथ ठठोली करने का मज़ा चखाता हूँ।"

रज्जो सहमकर मेहतेजी के पीछे जा छिपी। मेहतेजी ने ज़रा डपटकर कहा—"देवी, ख़बरदार, मोड़ी को हैरान किया, तो . ! मेरी वजह से तो बेचारियों का खेल बिगड़ा। रज्जो, डर नहीं। तुझसे कुछ कहा, तो कान उखाड़ लूँगा मैं इसके।"

रज्जो उत्साहित हो देवी के पास आकर खड़ी हो गई। ललिता ने

कहा—"बस, अब खेल ख़त्म करें। दिया-बत्ती का वक्त हो आया। घर में काम-काज करना है।" सभी अपने-अपने घर की तरफ़ इधर-उधर भागने लगीं, जैसे मास्टर के छुट्टी कर देने पर स्कूल के लड़के घर की ओर दौड़ते हैं, या फ़ौज का कप्तान जब छुट्टी का संकेत करता है, तो सिपाही अपने-अपने डेरों की राह लेते हैं। ललिता भी अपनी कुटी की ओर चली। रज्जो ने देवीसिंह के पास आकर कहा—"भैया, हमारा झूला तो पेड़ से उतार दो, नहीं रस्सी पानी से गल जायगी।"

देवीसिंह ने उत्तर दिया—"हाँ, ज़रूर तेरा झूला उतारूँगा! तूने ही तो आज मुझे झूला डालने को ज़बरदस्ती पेड़ पर चढ़ाया था, और फिर तूने ही जाकर बहना से चुग़ली खाई कि मैं खेत पर से आ गया, पर पेड़ पर चढ़कर झूला डाल रहा हूँ। जाओ, मैं झूला-ऊला नहीं उतारता; जिससे चाहो, उतरवाओ।"

रज्जो ने बड़े विनम्र भाव से हाथ पकड़कर कहा—"नहीं, अब मैं कभी बहना से ऐसा न कहूँगी। अब, जब तुम झूला डालने चढ़ोगे, मैं जाकर झूठ बोल दूँगी कि देवीसिंह अभी खेत से ही नहीं आया, या कह दूँगी, अभी मास्टर के यहाँ पढ़ रहा है। क्यों देवीसिंह, क्या कह दिया करूँ?"

देवीसिंह हँस पड़ा,—"हट झूठी, ख़ुद झूठ बोलना चाहती है, और मुझसे ही झूठी बात के लिये 'हाँ' कराना चाहती है!" कहकर झट छलाँग मार पेड़ पर चढ़ गया, और झूला खोल रस्सा रज्जो के हवाले किया। रज्जो रस्सा और पटली ले घर की ओर रवाना हुई। चलते-चलते यह कह गई—"देवीसिंह, चाहे झूला डालना या न डालना, मैं तो बहना से सच्ची-सच्ची बात ही कहूँगी।"

देवीसिंह "मतलबी कहीं की" कहकर हँसता हुआ कुटिया में घुस गया।

(३)

ख़याल कीजिए, क्या आज काम मैंने किया ;
जब उसने दी मुझे गाली; सलाम मैंने किया ।

—इंशा

संध्या हो गई है । दिया-बत्ती लगने में कुछ ही देर है । ललिता चौके में रसोई का सामान बटोर, चूल्हे में आग फूँक रही है । नवलसिंह आँगन में एक ओर बैठे गुड़गुड़ी से धुआँ उड़ा रहे हैं । न तो इनके और न ललिता के चेहरे पर उल्हास है । अपने-अपने काम में तो ये लगे हैं, पर अतरंग में कुछ उधेड़-बुन-सी लगी हुई मालूम होती है ।

इसी समय एक अधेड़ मनुष्य कुटिया के भीतर आया, और "मेहतेजी, जैरामजी की" कहकर उनके पास बैठ गया । नवलसिंह ने भी "आओ ठाकुर !" कहकर उसका स्वागत किया । फिर इनकी धीरे-धीरे कानाफूसी शुरू हुई ।

"वे लोग आ गए हैं, अब कहा करनो ?" ठाकुर साहब ने पूछा । इस पर मेहतेजी ने माथे पर हाथ रख, बड़ी शांति से समझाते हुए कहा—"भैया, तुम अपनी ओर से जोर-जास्ती कभी मत करियो, जितनो जाके पास हो, दे डालो । कुछ बाकी रहे, वाके लिये हाथ जोड़ दो, और कह दो कि महाराज, जब हमारे पास होगो, तुम्हारी कौड़ी-कौड़ी अदा करेंगे । देखो ठाकुर, जे बात ध्यान में रक्खो कि परमेसुर को कोप नहीं होतो, तो ऐसो बखत कैसे आतो । धरती मैया ने भरपूर उपज दी ; फिर भी वासे पूरे रुपए नहीं भए । जामें किसको

दोस है, हमारे ही भाग को खोट है ! जासे, भैया, जैसे भी हो, वखत टालो। ढोर, नाज, रुपया, पैसा, जो भी पास है, देके अपनी आबरू राखो। इतने पर भी वो जुलुम-जास्ती करें, तो करने दो। तुम अपनो हाथ मत उठाइयो, उनको अपनो पालक समझ के अपने को नीचो ही नवनो चाहिए।"

यह सुनकर ठाकुर साहब का मुँह गुस्से से लाल हो गया, फिर आँखों में आँसू भरकर बोले—"तो छै महीना बाल-बच्चों की गुज़र कैसे होगी ?"

नवलसिंह—"जैसे भगवान राखेगो वैसे रहेंगे।"

ठाकुर साहब "जैसी तिहारी मरजी।" कहते हुए बाहर चल दिए।

यहाँ ये बातें हो रही थीं, उधर इनके खेत पर कैसी नौबत बीत रही है, उसका भी हाल सुनिए।

देवीसिंह अपने मज़दूरों के साथ हल-बैल लेकर घर आने की तैयारी में था। एक हृष्ट-पुष्ट मनुष्य ख़ाकी वर्दी पहने, अपने साथ चार चपरास लगाए सिपाही लिए, खेत की मेंड़ के पास आया और दूर से ही आवाज़ दी—"अबे, ओ, इधर आ।"

देवीसिंह यह तो जान गया कि ये वे ही लोग हैं, जिनके बारे में कक्का कह रहे और समझा रहे थे, पर इनकी ऐसी बोल-चाल क्यों ? देवीसिंह बिना कोई उत्तर दिए वहीं खड़ा रहा। इस पर वर्दीवाले साहब का पारा गरम हो गया। खेत के भीतर घुस आए, और बोले—"बदमाश, हम बुलाते हैं, तू जवाब भी नहीं देता !"

देवीसिंह ने कहा—"हज़ूर, गाली क्यों देते हो ?"

यह सुनकर तो वह आग-बबूला हो गए। हाथ में छड़ी थी, दो-चार हाथ देवीसिंह की पीठ पर जमा ही दिए, और बोले—"गाली ! अबे, देख, अभी तेरा क्या हाल करता हूँ।"

देवीसिंह को बिना कारण के इस अपमान से बड़ा क्रोध आया।

उसने चाहा, इनकी और इनके सिपाहियों की यहीं अच्छी तरह मरम्मत कर दूँ। देवीसिंह-जैसे कसरती पट्ठे का चार-पाँच आदमियों से भिड़ जाना और उन्हें ठोक देना कोई बड़ी बात न थी। लाठी में तो ऐसा प्रवीण था कि अगर हाथ में हो, तो सौ-पचास की भी उसके सामने कोई गिनती न थी। पर पिता की सीख मन की आँखों के सामने आ गई। पिता का स्पष्ट आदेश मस्तिष्क में गूँज रहा था—"अधिकारी-वर्ग के प्रतिनिधि की ओर से, चाहे वह राज्य का हो, चाहे ज़मींदार का, यदि कठोरता या अपमान किया जाए, चाहे न्याय से या अन्याय से, तो शांति-पूर्वक सहन करना। यदि मार-पीट भी करे, तो सिर झुकाना, उसके बदले मार-पीट कभी न करना। ग़रीबों की आह परमेश्वर अवश्य सुनते हैं, और वही उद्दंडता की सज़ा भी देते हैं।"

यही सब सोचकर विवश देवीसिंह कुचले हुए सर्प की भाँति यह कहकर चुप रह गया—"साहब! गाली-गलौज और मार-पीट आप क्यों करते हैं; जो कहना हो, सीधे-सीधे कहिए।"

देवीसिंह के इस कथन से, मानो आग में घी की आहुति पड़ी। वर्दीवाले साहब किसान के छोकरे की इस हिम्मत को, कि उन्हें इस प्रकार उत्तर दे, कब बरदाश्त कर सकते थे। वह तो यह आशा रखते थे कि देवी उनके पैरों पर गिरकर, हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाएगा कि उसका क़सूर माफ़ किया जाय। उन्होंने चारों सिपाहियों को हुक्म दिया कि उसकी मुश्कें बाँध ली जायँ, और हल-बैल छीनकर कचहरी भेज दिया जाय। देखते-देखते यह सब हो गया। देवीसिंह को चारों सिपाही मुश्कें बाँध, गाँव में होकर ले चले। वर्दीधारी महाशय साथ में गालियों की बौछार करते और समय-समय पर बेंत के सड़ाके लगाते जाते थे। गाँव-भर में कोलाहल मचा हुआ था। जिधर से यह निकलते, गाँव के स्त्री, पुरुष, बच्चे सब-के-सब देवीसिंह की हालत देख आँखों से आँसू बहाते और जहाँ-के-तहाँ मूर्ति की भाँति खड़े-के-खड़े रह जाते। कुछ साहसी युवक इनके पीछे भी हो लिए।

जो ठाकुर साहब नवलसिंह से मिलने गए थे, उनके द्वार के सामने से जब इस प्रकार देवीसिंह पिटता हुआ निकला, वह तुरंत पगड़ी संभालते नवलसिंह के घर की ओर दौड़े। हल्ला-गुल्ला सुनकर नवलसिंह भी पौर से बाहर निकल आए, पर भीड़ में देवीसिंह को पहचान नहीं पाए थे। ठाकुर साहब को दौड़ते हुए आते देख, पूछने लगे—"कहो, का बात है, किसके साथ जुल्म हुआ ?"

ठाकुर आँसू भरी आँखों से बोला-"सब अपनी आँखन से देख लेओ।"

इतने ही में सारा जुलूस वहाँ आ पहुँचा। नवलसिंह ने अपनी आँखों देवीसिंह को रस्सों से कसा और बेतों की मार से लोहू-लुहान देखा। उसकी हालत घायल शेर की-सी हो रही थी। वह यही चाहता था कि पिता का ज़रा इशारा मिल जाय, तो इन रस्सियों से जकड़कर बँधे रहने पर भी बतला दूँ कि बिना कारण ग़रीब, बेक़सूर का अपमान करने का फल क्या होता है। गाँव के सारे नवयुवक भी, जो इनके साथ साथ आ रहे थे, इसी संकेत की प्रतीक्षा में थे। देवीसिंह ने आँसू-भरी आँखों स पिता की ओर देखा, मानो वह ज़बान से नहीं, पर आँखों से कह रहा है—"यह सारी दुर्दशा और अपमान, आपकी शिक्षा के अनुसार चलने की जो प्रतिज्ञा मैंने की है, उसी के कारण हो रहा है।" ठाकुर साहब भी ग़ुस्से से मेहतेजी की ओर ताक रहे थे—मानो आँखों-ही-आँखों पूछ रहे थे—'यह दृश्य देखकर भी अब अपना विचार और वक्तव्य बदलते हैं या नहीं ?" नवयुवक कभी मेहतेजी की ओर देखते और कभी ठाकुर साहब की ओर; तथा प्रत्येक पल किसी-न-किसी संकेत की आशा करते। पर नवलसिंह मेहते का पाषाण-हृदय यह सब देखकर भी, ज़रा न पसीजा। उन्होंने किसी से कुछ न पूछा, मानो मन-ही-मन सब बातें समझ गए। वर्दीधारी महाशय से विनीत भाव से, हाथ जोड़कर, कहा -"हुज़ूर, यह बेअक़्ल लड़का है, इसका क़सूर माफ़ करो। जो हुक्म हो, मुझसे कहो, मैं चाकरी करूँगा।"

वर्दीधारी इससे ज़रा नरम तो हुए, पर और लोगों पर रोब जमाने के लिये बोले—"यह लड़का बड़ा शैतान और बदतमीज़ है। आवाज़ देने पर यह मेरे पास आया तक नहीं। यह नहीं जानता, मैं कौन हूँ, और क्या कर सकता हूँ! मालूम होता है, तुम्हारे बल पर ही इसे शेख़ी है, और तुम्हीं ने गाँव-भर को बहकाकर बरग़ला रक्खा है। याद रक्खो, मैं सबको ठिकाने लगा दूँगा। बदमाश लोग ऐसे सरकश हो गए हैं कि ज़बानदराज़ी कर बराबरी करते और मुँह खोलकर जवाब देते हैं। यह नहीं समझते कि मैं ज़रा देर में गाँव-के-गाँव धूल में मिला सकता हूँ।" यह कहकर ज़ोर-ज़ोर से तीन-चार बेंत देवीसिंह पर और झाड़ दिए। वह बेचारा छटपटाने लगा। सारा युवक-समूह इस बात की प्रतीक्षा में था कि कब उन्हें इशारा मिले कि वह अपना ज़ोर दिखाएँ, और अपने भाई की इज़्ज़त का बदला लें; पर मेहतेजी के दिल पर ज़रा भी असर न हुआ। ठाकुर साहब भी मन-ही-मन बड़े कुढ़ रहे थे। सोचते थे, अजीब आदमी है, हम सबको भी बोदा बना रक्खा है। यदि इस समय बाहर के लोग न होते, तो ठाकुर साहब मेहतेजी को दो-चार एंडी-बेंडी सुनाए बिना न रहते। देवीसिंह की दशा पांडवों के भीमसेन की-सी हो रही थी। अब उसे अपने पिटने और अपमानित होने की परवा न थी, बल्कि उसके सामने पिता और सारे गाँव-भाइयों का जो अपमान किया जा रहा था, उसका दुःख था। जिस प्रकार दुःशासन द्वारा द्रौपदी का चीर खिंचते समय भीमसेन के मन में यह बात आती थी कि अकेले इस दुष्ट ही का नहीं, दुर्योधन और सारे कौरवों का अपनी गदा से ज़रा देर में विध्वंस कर डालूँ, पर महाराज युधिष्ठिर के वचन का ध्यान कर मन मसोसकर रह जाता, वैसी ही दशा देवीसिंह की थी।

नवलसिंह इस रोमांचकारी दृश्य से भी विचलित न हुए। हाथ जोड़कर कहने लगे—"हुज़ूर! क्षमा करो, मैं और ये सब गाँववाले आपके दास हैं। आपकी जो आज्ञा होगी, हम सब उसका पालन

करेंगे। आप ज़रा अपने गुस्से को शांत कीजिए। बैठिए, आपको खड़े-खड़े बड़ा कष्ट हुआ होगा।"

इस वक्तव्य से वर्दीधारीजी का गुस्सा कुछ कम हुआ। सिपाहियों को हुक्म दिया कि देवीसिंह की रस्सी खोल दें। फिर लाल-लाल आँखें निकालकर उससे कहा—"देख आइंदा कभी ऐसी बकवाद मत करना, नहीं तो इससे भी बुरा हाल होगा।" देवीसिंह कोने में जाकर अपना सिर दोनों घुटनों के बीच रखकर बैठ गया, और ये सब बातें खून की घूंट पीता रहा।

ठाकुर साहब के मन में इन सब बातों से कुछ और ही संदेह उत्पन्न हुआ। उन्होंने सोचा, कहीं मेहताजी भी तो इनसे भीतरी पेटे मिले हुए नहीं हैं। नहीं तो क्यों इनके बदन पर जूँ तक नहीं रेंगती। ऐसी बातों से पत्थर भी पसीज जाता है, पर यह तो ऐसे चिकने घड़े निकले, जिस पर पानी की बूँद तक नहीं ठहरती। पर साथ ही यह भी विचार आया कि अगर यह मिले हुए होते, तो इनके लड़के पर ही ऐसा अत्याचार क्यों होता! यही सब सोचकर मन-ही-मन कहने लगे—'बड़ेन की बातें बड़े ही जानें।"

जिस तरह जंग में फ़तेह पाकर फ़ौज का जनरल ऐंठ से बैठकर हारी हुई सेना के लोगों को घृणा की दृष्टि से देखता है, वैसे ही इन वर्दीधारीजी ने चारपाई पर अकड़कर बैठकर, जेब से सिगरेट निकाल दियासलाई से जला, मुँह से धुँआ निकालते हुए दाएँ-बाएँ देखा, फिर कहा "मेरा नाम शमशेरख़ाँ है, और मुझे नवाब साहब ने इस आला ओहदे पर मुक़र्रर फ़रमाया है। मुझसे ही तुम्हें आइंदा काम पड़ेगा।"

फिर जेब से एक पाकिट-बुक निकालकर उसके पन्ने पलटते हुए बोले—'अच्छा तुम्हीं से शुरू करता हूँ। लाओ लगान के डेढ़-सौ रुपए, जो तुम्हारी तरफ़ निकलते हैं। अभी जमा करो, फिर यहाँ से उठूँगा।"

नवलसिंह ने हाथ जोड़कर कहा—"हुज़ूर! रात तो आप कचहरी

में आराम करो, भोर होते ही जो मुझसे बनेगा, जमा कर दूँगा। यह तो आप जानते ही हैं कि इस साल उपज से कितने दाम मिले हैं। खाने को तो क्या, जीने-भर के लिये भी पूरा नहीं पड़ा।"

ख़ाँ साहब को फिर ताव आया। बोले—"देखा! कैसा बिलैया-दंडवत् करके बचना चाहता है, मीठी-मीठी बातें बनाकर कोरा ही टरकाना चाहता है? देख बुड्ढे, फ़ौरन् रुपया दे दे, इसी में तेरी ख़ैर है।"

ललिता ने चौके में ही बैठे, अपनी कुटी के पास हुल्लड़ होते सुन लिया था। पर जब देखा, बाहर लड़ाई-झगड़े की-सी आवाज़ आ रही है, तो उसने पौर से निकलकर बाहर की ओर झाँका। जो कुछ उसने देखा, उससे उसका कलेजा काँप उठा, बदन थर्राने लगा। उसने अपनी आँखों भाई देवीसिंह पर बेंतों की मार पड़ते देखी, और अपने कानों पिता को गालियाँ खाते सुना। समझ में न आया कि बिना कारण इन बेचारों पर कौन ऐसा अत्याचार कर रहा है। और देखा न गया। वह कोमल-हृदया इस वेदना से वहीं पछाड़ खाकर गिर पड़ी, और बेहोश हो गई। जब ज़रा-ज़रा होश आने लगा, तो ख़ाँ साहब की डाँट और रुपए के सवाल की भनक कान में पड़ी।

इधर ख़ाँ साहब की फटकार सुन नवलसिंह ललिता से सलाह करने भीतर कुटी में जाने लगे। पौर में घुसते ही देखा, ललिता बेसुध धरती पर पड़ी है। ललिता ने पैरों की आहट सुन आँखें खोलीं, और पिता को आते देख तुरंत उठकर खड़ी हो गई, और उनके गले से लगकर, फूट-फूटकर रोने लगी।

रोने की आवाज़ बाहर ख़ाँ साहब को भी सुनाई दी। दुष्टों का वज्र-हृदय कभी पसीजता थोड़े ही है। उन्होंने वहीं से डपटकर कहा—"रोने-धोने से कुछ काम नहीं चलेगा। गाँठ से रुपए निकालो, रुपए।"

सुकुमार ललिता के सारे शरीर में इन निर्दयता-पूर्ण कठोर वचनों

से बिजली-सी दौड़ गई, जो अब तक लज्जा के कारण अन्य पुरुषों के सामने निकलना पसंद नहीं करती थी, उसे भी जोश आ गया। सारी लाज ताक़ पर रख वह पिता को बाहर खींच लाई, और स्वयं उन ख़ाँ साहब के सामने खड़ी हो साहस के साथ बोली—"साहब, आपके रुपए का इंतज़ाम किए देते हैं, आप थोड़ा सब्र रखिए।" और फिर पिता से कहा—"कक्का, लो यह मेरा तावीज़, यह सोने का है, इसमें हीरा जड़ा है। इसे बेच डालो। और, ठहरो, घर में काकी की हमेल, जो उसने मुझे मरते समय दी थी, रक्खी है, उसे भी ले जाओ। इनसे सब रुपया पट जायगा।"

नवलसिंह को इन चीज़ों का बिलकुल ध्यान न था। ललिता के प्रस्ताव को दैवी सहायता जान सजल नेत्रों से वह उसकी ओर कृतज्ञता से देखने लगे। फिर बोले—"बेटी, तुम अपना तावीज़ रहने दो, इसमें झूठे नग जड़े हैं। इससे कितना रुपया मिलेगा? हाँ, अपनी हमेल ला दो।"

सारे गाँववाले ललिता की ओर श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखने लगे, जैसे मंदिर में स्थापित किसी देवी-मूर्ति को भक्तजन देखते हैं। ख़ाँ साहब ने भी नज़र भरकर इस बालिका की ओर ताका, तो आँखों के सामने चकाचौंध-सी छा गई। मन में कहने लगे—"उफ़्! यह हूर की बच्ची इस चील के घोंसले में क्योंकर आ गई! यह जन्नत की परी है, या गाँव की गँवारिन! या मेरे ख़ुदा! कैसा हुस्न इसे तूने बख़्शा है—यह नज़ाकत, यह ख़ूबसूरती...!" जो जैसी प्रकृति का होता है, उसके मन की भावना भी वैसी ही होती है। जहाँ गाँववालों के हृदय में श्रद्धा और भक्ति इस बालिका के प्रति उत्पन्न हुई, वहाँ ख़ाँ साहब के हृदय में बुरे और कलुषित विचारों ने स्थान पाया। वह मन-ही-मन इस लड़की को अपनी भावी उन्नति, धन और उच्च पद का साधन बनाने की उधेड़-बुन में रेत का क़िला गढ़ने लगे। सोचा—"नवाब साहब को जब यह तोहफ़ा पेश करूँगा, तो वह बहुत ख़ुश होंगे।

न-जाने मुझे क्या मिल जाय। शायद जागीर का ही कुछ हिस्सा बख़्श दें।"

ललिता ने अपने पिता नवलसिंह के सामने सोने की हमेल पटक दी, और उन्होंने ठाकुर साहब से गाँव के बोहरे के यहाँ जाकर इसे बेच रुपए लाने को कहा, तो ख़ाँ साहब ने रंग बदला। इस सौंदर्य की प्रतिमा को देखने के बाद उन्हें इस घर से बड़ी-बड़ी आशाएँ बँध गई थीं। तुरंत बोले—"अच्छा, इस लड़की का ज़ेवर इसके ही पास रहने दो, इसे बेचकर मैं कर चुकाना पसंद नहीं करता। मैं नवाब साहब की ख़िदमत में जाकर सब माजरा अर्ज़ किए देता हूँ। उनका जो इरशाद होगा, उसी के मुताबिक़ तामील की जायगी।"

यह कहकर ख़ाँ साहब खटिया से उठे, और अपने सिपाहियों के साथ वहाँ से चल दिए। जाते समय इस ललिता को नज़र गड़ाकर देखते गए।

ललिता यह समझकर कि इस दुष्ट को पश्चात्ताप से दया आ गई होगी, इसीलिये इसने हमेल लेने से इनकार कर दिया, अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिये खड़ी रह गई थी; पर इसकी कुदृष्टि को ताड़ गई। देवीसिंह और नवलसिंह के मन में भी उस दुष्ट का बालिका की ओर इस प्रकार घूरना खटका!

इनके पाँव फेरते ही भीड़ के सब लोग एक आवाज़ से बोल उठे—"सत्य की जय!" मेहतेजी ने भी हाथ जोड़ कर सबको बिदा किया। देवीसिंह को हाथ पकड़कर उठाया, और गले से लगाया। फिर वह, देवीसिंह और ललिता, तीनों ने कुटी में प्रवेश किया।

*　　　　*

(४)

दुर्बल को न सताइए, जाकी मोटी हाय;
बिना जीव की स्वांस सों, लोह भसम ह्वै जाय।

—कबीर

आपने लखनऊ के नवाब वाजिदअलीशाह का हाल और उस वक्त के लखनऊ की शान, उनके इक़बाल का दौरदौरा तथा उनके दरबार

की बीसियों रंगीन रुबाइयातें सुनी होंगी। काल-चक्र से उस ज़माने के और आजकल के रहन-सहनमें ज़मीन-आसमान का अंतर पड़ गया है, और उस समय की बातें अब क़िस्से-कहानियाँ-सी मालूम पड़ती हैं। पर आज भी कुछ ऐसे नवाब मौजूद हैं, जो दिल के भोले, सहृदय और वास्तव में सच्चे नवाब हैं। यदि अतीत काल की भाँति ही इनकी आय होती, और इनके ख़ज़ाने रुपयों-अशर्फ़ियों से भरे होते, तो लोग लखनऊ में फिर वाजिदअलीशाह का-सा मज़ा लूटते दिखाई देते। पर बात तो उलटी पड़ गई है। रुपया बचना तो दरकिनार, बड़े-से-बड़े घरानों में भी अपनी बात बनाए रखने की पड़ी हुई है। कितनी ही बड़ी जागीर हो, कितना ही बड़ा ताल्लुक़ा हो, आजकल के ख़र्चे इन्हें सिर उठाने का अवसर नहीं देते।

नवाब सआदतअलीख़ाँ भी इन्हीं ताल्लुक़ेदारों में से एक हैं। जैसे सीधे और सच्चे हैं, वैसे ही अपनी बात के धनी। सरकार में इनका यथेष्ट मान है, इसी तरह इन्हें अपनी प्रजा पर भी अभिमान है। अपने एक मित्र की सिफ़ारिश पर अभी हाल ही में शमशेरख़ाँ को गाँव की उगाही के लिये अपना कारिंदा मुक़र्रर किया था, और सबसे पहले उन्हें अपनी जागीर के तरनतारन-गाँव में भेजने का मौक़ा मिला। शमशेरख़ाँ बड़े चलते हुए शोहदों में से थे। इन्होंने यही सोचकर नौकरी की थी कि नवाब के यहाँ नौकर रहकर ख़ूब गुलछर्रे उड़ाएँगे। इन्हीं शमशेरख़ाँ साहब ने उस गांव में जाकर क्या रंग रचा, और कैसा गुल खिलाया, इसे आप देख चुके हैं। बस, गाँव से फ़ौरन् वापस हो ख़ाँ साहब लखनऊ आए, और अपने मालिक नवाब साहब के दरे-दौलत पर हाज़िर हुए।

नवाब साहब दोपहर का खाना खा, आराम करने के बाद बाहर दीवानख़ाने में, लौढ के सहारे फ़रशी गुड़गुड़ा रहे थे, और नौकर से तलाश कर रहे थे कि चौसर खेलनेवाले दोस्त-अहबाब आए या नहीं। इतने ही में नौकर ने आकर इत्तिला की—"हुज़ूर, शमशेरख़ाँ कारिंदे

आकर बाहर बैठे हैं, और हुज़ूर से तख़लिए में बातचीत करना चाहते हैं।"

नवाब साहब ने कहा—"क्या उन्हें मालूम नहीं, मैं काम के मुताल्लिक़ बातचीत सुबह के वक्त, 'दरबार आम' में, किया करता हूँ। और, क्या तुमने भी उनसे यह नहीं कहा?"

नौकर ने हाथ जोड़कर कहा—"हुज़ूर, मैंने कह दिया था, पर फिर भी उन्होंने ज़िद कर कहा कि जाकर अर्ज़ कर दो।"

नवाब साहब ने फ़रमाया—"अच्छा, बुला लाओ।"

इस बेवक्त, ख़ाँ साहब का आना नवाब साहब ने पसंद नहीं किया। शमशेरख़ाँ ने आकर नवाब साहब को झुककर बहुत अदब के साथ सलाम किया, और खड़ा रहा। नवाब साहब ने दरयाफ़्त किया—"तुम तो अभी हाल ही में जागीर पर वसूली करने गए थे, इतनी जल्दी वापस क्यों लौट आए? मालूम होता है, लोगों की हालत कमज़ोर हो गई है, और उनकी नादारी की वजह से वसूली नहीं हो सकी।" शमशेरख़ाँ के चेहरे की कुछ ग़ैरमामूली-सी, अकबकाई हुई हालत देख नवाब साहब ने समझा, नई नौकरी की है, शायद कुछ वसूली न होने से घबरा गया है। बोले—"कोई बात नहीं, मुझे आजकल लोगों पर कैसी बीत रही है, सब मालूम है। बेचारे जब पनप जायँगे, तब अपने आप दे देंगे। मेरी रियाया बड़ी भली और वफ़ादार है।"

अब कारिंदे साहब का मुँह खुला। बोले—"जी नहीं, हुज़ूर, ऐसी कोई बात नहीं है। हुज़ूर के इक़बाल और डंडे के ज़ोर से एक-एक कौड़ी वसूल कर लूँगा। मैं इस वक्त हुज़ूर की ख़िदमत में एक ख़ास बात अर्ज़ करने हाज़िर हुआ हूँ, और इसीलिये तख़लिए की इस्तदुआ की है।"

नवाब साहब मन में सोचने लगे, ऐसी ख़ास बात क्या हो सकती

है; जिसके लिये यह गाँव से यहाँ वापस आया। बोले—"अच्छा, कहो।"

कारिंदेजी ने ज़रा बदन मटकाकर, धीरे-धीरे सरकते हुए क़रीब पहुँचकर, धीरे से कहा—"हुज़ूर, तरनतारन गाँव में मैंने एक निहायत ख़ूबसूरत परी-रू देखी। क्या मस्तानी अदा है! बस, हुज़ूर, मालूम होता है, ख़ुदा ने अपने हाथ से ही उसे गढ़कर बनाया है। वह हुज़ूर के महल के ही क़ाबिल है। जब हुज़ूर का इरशाद हो, हाजिर करूँ।"

नवाब साहब इन बेढंगी बातों से बड़े चकराए। दाँतों-तले उँगली दबाकर सबसे पहले सोचने लगे कि इस एक मामूली कारिंदे की इतनी जुर्रत कि मेरे सामने आकर बेधड़क इस क़िस्म की बातें करना शुरू कर दीं—फिर जो कहा, उसका मतलब समझ में नहीं आया। 'महल के क़ाबिल है', इससे क्या समझा जाय? क्या इसे मालूम नहीं, मैं अपनी बेगमात के अलावा किसी भी दूसरी औरत को अपनी बहन की मानिंद समझता हूँ। सोचा, बात को साफ़ कर लेना ही मुनासिब है। इस-लिये ज़रा तनककर कहा—"तुम्हारे कहने का मतलब मैं नहीं समझा। तुम साफ़-साफ़ बतलाओ, क्या चाहते हो?"

कारिंदेजी ने कहा—"हुज़ूर, एक हिन्दू किसान की लड़की, जिसकी उम्र अभी पंद्रह-सोलह साल की होगी, ग़ज़ब का हुस्न रखती है। किसान बिलकुल नादार है। अपने लगान का रुपया भी अदा नहीं कर सकता। ऐसा ख़ूबसूरत फूल जंगल में पड़े रहने के क़ाबिल नहीं, वह तो यहाँ ही नूरे-महल होने के लायक़ है।"

अब नवाब साहब ने इसकी बुरी नीयत और बेहयाई की तजवीज़ समझी। ग़ुस्से में आकर फटकारकर कहा—"नालायक़, तुझे ऐसी गुफ़्तगू मुझसे करते शरम नहीं आती। मेरी रियाया की लड़की और उसके मुताल्लिक़ तेरे ऐसे गंदे ख़यालात! लाहौल! तुझे मालूम नहीं, मैं ग़ैर औरत को अपनी मा-बहन समझता हूँ, और अपनी

रियाया की लड़की को, चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, अपनी लड़की मानता हूँ। कमीने, तू मेरे यहाँ नौकरी करने के क़ाबिल नहीं। तुझ पर ख़ुदा की लानत! जा, मेरे सामने से दूर हो।" फिर नौकर को बुलाकर हुक्म दिया कि इससे सारे काग़ज़ात और मुहर-निशानात छीन लिए जायँ, और चपरासियों के ज़रिए जागीर पर भी इत्तिला कर दी जाय।

कारिंदेजी इस लताड़ से दीवाने बन गए। सोचा क्या था, और हुआ क्या? उनकी सारी आइंदा की उम्मेदों पर पानी फिर गया। धीरे-धीरे कुछ गुनगुनाते बाहर आए। सोचा, बेहलरी तो गई चूल्हे में, उलटे नौकरी से भी हाथ धोना पड़ा। बस, रोनी सूरत बनाए अपने घर का रास्ता लिया।

* * *

(५)

विश्वदेव! ये देख तुम्हारी दुर्गम चालें,
किससे क्या-क्या कहूँ, कहाँ तक आँसू डालें?

—माखनलाल चतुर्वेदी

* * *

क्या पाप ही की जीत होती, हारता है पुण्य ही?
इस दृश्य को अवलोककर तो जान पड़ता है यही।

—मैथिलीशरण गुप्त

"कक्का, आज भोर से ही लल्लो कहाँ गई?" देवीसिंह ने चारपाई से उठकर दोनो हाथों से आँखें मलते हुए और खोजती हुई निगाह से इधरउ-धर देखते हुए कहा।

"क्यों ? तुझे क्या करना है, यहीं कहीं होगी।" नवलसिंह मेहते ने उत्तर दिया।

"नहीं कक्का, सो बात नहीं। आज तो झाड़ू-बुहारू भी नहीं लगी, चौके में बरतन वैसे ही जूठे पड़े हैं। जिस खटिया पर वह लेटी थी, वह भी आँगन में वैसे ही पड़ी है।" देवीसिंह ने फिर कहा।

यह सुनकर तो मेहतेजी गुड़गुड़ी हाथ में लिए भीतर आँगन में आए, और चारों तरफ़ आँखें फैलाकर देखने लगे।

आज का ढंग और दिन से निराला था। ललिता कभी इस तरह घर का काम छोड़ बाहर नहीं जाती थी।

किसी अज्ञात आशंका से काँप उठा नवलसिंह। देवीसिंह से घबराकर कहा—"देवी ! जा, ठाकुर के यहाँ तो देख, वहाँ न हो, तो और पड़ोस के घरन में देखियो, पुजारीजी के देखियो, कहीं बिटियन के साथ नदी नहाने न चली गई हो।"

देवीसिंह भी घबराया हुआ उठा। सबसे पहले वह ठाकुर साहब के घर पहुँचा। ठाकुर बाहर ही बैठे चिलम फूँक रहे थे। उसे असमय ही आते देख बोले—"काहे रे देवी, सकारे-सकारे मूँड़ खोले कहाँ भाजो फिरत है।"

"कहीं नहीं दद्दा, आप ही के यहाँ आया था। लल्ला आई है का ?" देवीसिंह ने कहा।

"नहीं भैया, वह सुबह-सुबह ही यहाँ काहे को आने लगी !" ठाकुर ने आश्चर्य मिश्रित स्वर में उत्तर दिया।

देवीसिंह उलटे पैर लौटा, और पुजारीजी के यहाँ गया वहाँ भी ऐसा ही उत्तर मिला। बेचारा घंटे-डेढ़ घंटे यों ही गाँव-भर में चक्कर मारता फिरा, पर ललिता का पता कहीं भी न मिला। अंत में दौड़ा हुआ नदी पर गया। दूर से कुछ स्त्रियों को स्नान करते देखा, संभवतः ललिता इन्हीं के साथ नहाती हो, पर पास आने पर देखा, तो ललिता का कहीं पता नहीं। घबरा उठा बेचारा आँखों के आगे चक्कर आने लगे। घर लौटते समय पाँव सीधे नहीं पड़ते थे।

इधर जब देवीसिंह ललिता की खोज में गाँव में घर-घर फिरा, तो सबको यह मालूम हो गया कि ललिता का घर पर पता नहीं है। तू चल और मैं चल की पड़ गई। मेहतेजी के द्वार पर भीड़ लग गई। मेहतेजी बेचारे आँख फाड़कर देवीसिंह के लौटने की राह देख रहे थे। कुछ क्षण पश्चात् ही देवीसिंह भी घबराया हुआ, गिरते-पड़ते आ पहुँचा। मुँह से बात न निकलती थी, पर जो कुछ समाचार वह देना चाहता था, उसके मुख पर फैली निराशा स्पष्ट बता रही थी। आते ही नवलसिंह ने पूछा—"काहे, पता नहीं चला ?"

अश्रु-पूर्ण नेत्रों से उसने सिर हिलाकर उत्तर दिया—"नहीं।"

बेचारे वृद्ध मेहते पर वज्र-सा गिरा। अचेत हो वहीं लुढ़क गए। देवीसिंह का सारा ज़ोर और सारी कसरत इस घटना से हवा हो गई, चेहरे पर मुरदनी छा गई, खड़े होने तक की शक्ति नहीं रही, और वहीं दीवार के सहारे सिर टेककर बैठ गया।

ललिता की सहेली रज्जो भी आ पहुंची; और देवीसिंह के पास जा पूछा—"भैया, फिर लल्लो गई कहाँ ?"

मगर देवीसिंह की मानो वाक् शक्ति लुप्त हो गई थी। जब उसे उत्तर की कोई आशा दिखाई न दी, तब जाकर मेहतेजी पर पंखा झलने लगी। भीतर से एक लोटे में पानी लाकर उनके कंठ में डाला। जब उन्हें कुछ होश-सा आया, तो अधखुली आँखों से ही इस बालिका से चिपटकर चिल्ला उठे—"लल्लो, तू आ गई, कहाँ गई थी ?" और पुनः नेत्र बंद कर लिए।

ठाकुर साहब भी आ पहुँचे, और नवलसिंह के पास ही बैठ वृद्ध मेहते की नब्ज़ देखने लगे। बोले—"डरने की कोई बात नहीं। नब्ज़ ठीक चल रही है।" फिर गाँव के लड़के-लड़कियों से, जो चारों ओर एकत्र थे, बोले—"बेटा, यहाँ खड़े-खड़े क्या करते हो ? जाओ, कहीं लल्लो का पता लगाओ।"

बड़ी देर बाद मेहतेजी ने आँखें खोलीं, और रज्जो को अपनी सेवा करते पाया। गाय की तरह डकराकर बोले—"काहे रज्जो, लल्लो का पता नहीं चला ?"

रज्जो ने बड़े धीमे स्वर से उत्तर दिया—"दद्दा, सब पता चल जायगा। तुम जिन (मत) घबराओ, जब तक लल्लो नहीं आएगी, मैं ही घर का सब काम-काज कर लूँगी।"

मेहतेजी ने रज्जो के सिर पर सप्रेम हाथ फेरा, और कहा—"सो तो ठीक ही है बेटो !"

गाँव की रत्ती-रत्ती ज़मीन छान डाली गई। आस-पास के दो-दो, चार-चार कोस तक लोग ढूँढ़ फिर आए। नदी के उस पार भी ढूँढ़ा-ढकोली हुई, पर ललिता का पता न चलना था, न चला। दिन-भर मेहते और देवीसिंह ने मुँह में जल की एक बूँद तक नहीं डाली। जब दिया-बत्ती हो गई, रज्जो की मा ने कुछ थोड़ा-बहुत भोजन बनाकर रज्जो के हाथ मेहते के घर भेजा। रज्जो ने बड़ी मिन्नत से हाथ-पैर जोड़कर थोड़ा-सा भोजन नवलसिंह और देवीसिंह को कराया, और इस प्रकार पिता-पुत्र रोते-धोते खुरेरी खाटों पर पड़ रहे।

गाँव में घर-घर ललिता के ग़ायब होने की ही चर्चा चल रही थी। कोई कहता—"वा दिन उस कारिंदे ने जो उसके भैया को मारा-पीटा, उसकी शरम चढ़ गई। ग़ुस्सा के मारे किसी कुआँ-बावली में जाकर डूब मरी।"

कोई कहता—"भैया, जा गाँव में भूतन की फेरी होने लगी है, वो ही उड़ा ले गए।"

संसार में हर जगह हर प्रकृति के लोग हैं। जहाँ भले, वहाँ बुरे भी होते हैं। तरनतारन के अधिकांश लोग सच्चरित्र और सरल स्वभाव के ही थे। फिर भी कुछ कुटिल प्रकृति के भी थे ही। चार-पाँच स्त्रियों के समूह में बातें हो रही थीं। एक प्रौढ़ा स्त्री हाथ मटकाकर धीरे-धीरे कह रही थी—"अरे, जे सब जवानी को भभाटो

है। इस मेहते की आँख मूँच गई थी, जो इलेक बड़ी बिटिया को क्वाँरी राखी। वो तो किसी के संग भाज गई। भगवान्! वाकी आँखें तुमने नाहीं देखीं, कैसी चलती थीं। इतने दिना कैसे टिकी, मुझे तो जे ही अचंभा है। फिर, इस बूढ़े की मत कैसी बिगड़ गई, जो पढ़ा-गुनाके और बिजली डार दी। बेहना, आजकल के ज़माने में वैसे ही बिटियाँ टिकी रहें, तो गनीमत है, फिर वो तो चिट्ठी-चपाती भी लिख लेती थी। तुम कछू पूछो जिन।"

इस पर दूसरी स्त्री, जो कुछ सहृदय थी, बिगड़कर बोली—"चुप रह कुटनी, जैसी तू है, वैसी ही सबको जानती है। लल्लो-सरीखी मोड़ी (लड़की) हो तो ले। याद रख, जो तूने ऐसी झूठी-सच्ची बातें भिड़ाई तो तेरी जीभ निकाल लूँगी।"

दूसरी स्त्रियों ने भी उसका समर्थन किया, और पहली को भले प्रकार धिक्कारा, तब वह उठ खड़ी हुई—"देख लीजो, साँची बात सब सामू आई जात है।" कहती हुई एक ओर चल दी।

इस संसार का यही नियम है कि बुरी-से-बुरी और अच्छी-से अच्छी बात की कुछ रोज़ तो ख़ूब चर्चा रहती है; परंतु समय के साथ-साथ बात पुरानी पड़ती जाती है, लोग उसे भूलते जाते हैं, और फिर कुछ दिनों बाद तो ऐसा मालूम होता है, मानो कोई बात कभी हुई ही न हो।

एक सप्ताह बाद भी जब ललिता का पता न चला, तो मेहते नवलसिंह और देवीसिंह ने तरनतारन छोड़ दिया। परमेश्वर जाने, लड़की का पता चलाने की धुन में या गाँव में दुःख से चित्त न लगता था, इसलिये या जीविका की खोज में। जाते समय दुखी मन से गाँव-भर के लोग उन्हें गाँव की सीमा तक पहुँचाने आए। रज्जो भी बिलखती रही—"लल्लो गई, और अब दद्दा और भैया भी चले!"

नवलसिंह ने ज़मीन और कुटिया ठाकुर साहब के हवाले की, और कहा—"भैया, जीते रहेंगे, तो फिर आएँगे।"

आज ललिता को खोए और मेहतेजी को गाँव छोड़े छ महीने से अधिक दिन हुए होंगे। तरनतारन की चहल-पहल फिर वैसी-की-वैसी ही है। लोगों को अब विना किसी के ज़िक्र किए इन लोगों की याद भी नहीं आती। रज्जो अवश्य जब कुटिया के सामने से निकलती, तब लल्लो की याद में दो आँसू बहा दिया करती थी।

* * *

(६)

क्या-क्या फ़रेब कहिए दुनिया की फ़ितरतों का;
मक्कोदग़ा व दुज़्दी है काम अफ़सरों का।

—नज़ीर

नवाब साहब से लताड़ खाकर शमशेरख़ाँ सीधे अपने घर लौटे। कुछ देर मन-ही-मन कुछ दाँव-पेच लड़ा उठे, और अपने उन्हीं मित्र के यहाँ पहुँचे, जिनकी सिफ़ारिश ने उन्हें नवाब साहब के यहाँ नौकर कराया था; और नवाब साहब के यहाँ से नौकरी छूटने का हाल सुनाया, पर तरनतारन का सारा माजरा छिपा गए। यह मित्र बड़े सज्जन और उदार व्यक्ति थे। शमशेरख़ाँ के चाल-चलन से भली भाँति परिचित थे। ताड़ गए, अवश्य ही इसने कोई कमीनेपन की हरकत की होगी, अन्यथा नवाब जैसे-सहृदय स्वामी किसी को स्वयं नौकरी से अलग नहीं करते। शमशेरख़ाँ को सूखा-सा जवाब दे दिया,—"जब तुम नवाब सआदतअलीख़ाँ-सरीखे शरीफ़ और आक़िल के यहाँ न टिके, तो ख़ुदा जाने, तुम किसके यहाँ नौकरी कर सकोगे? मैं अब कहीं तुम्हारी सिफ़ारिश नहीं कर सकता। अब तुम ख़ुद जैसी चाहो, नौकरी तलाश कर लो।"

यहाँ से भी ताड़ना मिलने पर शमशेरख़ाँ घर वापस आए। दालान में एक टूटी-फूटी कुर्सी पड़ी थी, उसी पर बैठकर भविष्य के लिये चक्रव्यूह रचने लगे। सोचने-लगे—"क्या दुनिया में सभी दूसरों के ही बल पर नाचा करते हैं। कोई परवा नहीं, नवाब साहब को मरने दो, और मेरे दोस्त को भी जाने दो जहन्नुम में! अब तो मैं अपने दिमाग़ और अपने बाज़ुओं की ताक़त से ही कमाना सीखूँगा, और ख़ुद ही रोज़गार तलाश करूँगा। या ख़ुदा, मेरी मदद कर।"

कहावत है—"चोर से कहे चोरी कर, साह से कहे जागता रहियो।" हमारा तो विचार है कि भगवान् के लिये यह कहावत ख़ूब फबती है। वह जहाँ सज्जन, साधु और सच्चे लोगों की कामनाएँ पूरी करते हैं, वहाँ दुष्ट, दुराचारी और दग़ाबाज़ मनुष्यों की प्रार्थनाओं पर भी अवश्य ध्यान देते हैं। जब सद्गृहस्थ अपने धन और कुटुंब की रक्षा के लिये भगवान् का ध्यान करते हैं, डाकू भी अपनी मनोरथ-सिद्धि के लिये भगवान् के ही प्रार्थी होते हैं। जब दुर्योधन और युधिष्ठिर दोनो श्रीकृष्ण भगवान् से सहायता माँगने द्वारका पहुँचे उन्होंने दोनो की प्रार्थना स्वीकार की, और दोनो ही को सहायता देने का वचन दिया। चाहे प्रिय उन्हें सत्य ही हो, और विजय भी उसी को देते हों।

अतः शमशेरख़ाँ ने भी दिल में एक बात ठान ली, और सफलता के लिये भगवान् से सहायता माँगी। वह बाहर निकल पड़ा, और अमीनाबाद होते हुए राजा उत्तमसिंह की कोठी की ओर चला। राजा साहब यहाँ के बड़े ताल्लुक़ेदार हैं। लोगों में इनकी यथेष्ट मान-मर्यादा है। कहते हैं, अँगरेज़ सरकार भी भय से इनकी प्रतिष्ठा करती है, और इनके ताल्लुक़े पर हाथ नहीं डालती। राजा साहब आजकल की राजनीतिक हलचल में भी भाग लेते हैं। अंतर में जो कुछ भी हो, पर प्रत्यक्ष में उनका जनता पर बड़ा प्रभाव है। वह प्रतिष्ठित नेता और जन-सेवक माने जाते हैं। सार्वजनिक सभाओं में लंबे-लंबे

लेक्चर फटकारते हैं, कोठी पर भी खद्दरपोश तथा गांधी टोपीवालों का आवा-गमन सदा ही रहता है। राजा साहब के इस आमोद-प्रमोद के स्थान को हमने अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार 'कोठी' का नाम दे दिया, पर वास्तव में यह हमारी भूल है।

कहते हैं, राजा साहब को पुरातन वस्तुओं का बड़ा चाव है, अतः शहर के बाहर एक अजायबघर-सा बना रक्खा है, जिसे सर्व-साधारण 'जादूघर' के नाम से संबोधन करते हैं। इसमें विचित्र-विचित्र वस्तुओं का संग्रह किया गया है। देश-देश के लोगों की लाशों को रासायनिक द्रव्य आदि लगाकर ऐसा बनाकर खड़ा किया गया है, मानो वे जीवित मनुष्य ही हों। इसी प्रकार कहीं मनुष्य-पिंजर, कहीं मनुष्यों के भेजे एकत्र कर रक्खे हैं। सरकार तथा राज्यों की ओर से तो ऐसी वस्तुओं का संग्रह किया जाना अवश्य देखा है, पर लखनऊ ऐसे प्रमुख तथा प्रसिद्ध नगर में इन राजा साहब को ऐसा अजायबघर निर्माण करने की कौन-सी आवश्यकता पैदा हुई।

शमशेरखाँ ने इन्हीं राजा साहब से भेंट करने की ठानी, और इनके निवास-महल में नहीं, उक्त 'जादूघर'-नामक कोठी में जा धमके। सायंकाल का समय था, दिए जलने में विलंब था। राजा साहब के मुसाहिबों में एकआध से इनका परिचय था। उन पर और भाग्य पर भरोसा रख, इन्होंने राजा साहब के पास अपनी 'रपट' पहुँचाई। पाँच मिनट बाद एक लंबे अँगरखेदार वर्दी पहने हुए व्यक्ति ने—उसे हम चपरासी कहें, जमादार कहें, ख़िदमतगार कहें, या अँगरेज़ी भाषानुसार 'बटलर' कहें, इसका कुछ निश्चय नहीं कर सके—आकर उत्तर दिया—"राजा साहब ने फ़रमाया है, इस वक्त उन्हें फ़ुरसत नहीं। रात को नौ बजे बाद आकर महल पर मिलें।"

सुनकर शमशेरखाँ प्रसन्नता से फूले न समाए। "ख़ुदा ने मेरी दुआ क़ुबूल की। कामयाबी मेरे आगे दौड़ती नज़र आती है, वरना राजा साहब मुझसे मिलने के लिये रात का वक्त ही क्यों मुक़र्रर करते।

यह फ़र्क़ है, एक हमक़ौम और ग़ैरक़ौम के रईस में ! नवाब साहब ने हमारी क़ौम के होकर हमारे साथ कैसा बर्ताव किया। मिलने गए, तो सुबह का वक़्त तजवीज़ किया। अरे मियाँ, बने फिरते हैं नवाब, मगर हैं दर असल मोची। इन्हें देखिए, यह हैं रईस—अभी मुलाक़ात भी नहीं हुई, तब भी 'रपट' से ही मालूम होता है कि ताड़ लिया। रात के वक़्त, घड़ी-भर बैठकर गप-शप मारने को तो मिलेगी। ऐसे ही वक़्त, ऐसी ही जगह और ऐसे ही मौक़े पर तो यार लोगों के काम बनते हैं।"

इस प्रकार वह मन-गढ़ंत करते, क़दम बढ़ाते, चलते गए। यह भी न मालूम पड़ा कि बाज़ार में कब आ गए। कुछ देर अमीनाबाद-पार्क में ठहरने के पश्चात् एक दूकान में—जिस पर 'शाही होटल' का बोर्ड टँगा था, मगर भठियारे की दूकान-सी मालूम होती थी—जा घुसे, और रोब से एक लोहे की कुर्सी पर बैठ गए। सामने एक टूटी-फूटी मेज़ भी पड़ी थी, जिस पर धूल की पर्तें जमी थीं, और चारों ओर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। इन सबकी कुछ चिंता न कर मानो आज मेज़-कुर्सी पर खाना मिल जाने पर अपने भाग्य को सराह रहे थे। खाना लाने की आज्ञा बड़े रोब से दी गई। एक छोकरे ने, जिसके बदन पर सिवा एक मैले और फटे पाजामे के कुछ न था, दो चीनी की बड़ी रकाबियाँ लाकर रख दीं, जिनमें से एक में क़रीब आधा दर्जन चपातियाँ थीं, और दूसरी में कोई रसेदार तरकारी। इसके बाद एक काच के गिलास में, जो था तो सफ़ेद, मगर मैला होते-होते रंगीन-सा मालूम होने लगा था, पानी भरकर रख दिया।

खाँ साहब ने मन में तो ख़ुदा को शुक्र भेजा, मगर बाहर बड़प्पन दिखाने को कह डाला—"ओह, बड़ा गंदा होटल है। न तो अच्छा सामान और न अच्छा खाना—छुरी-काँटे भी नहीं। कैसा मेज़ का खाना है।"

यदि छुरी-काँटे से खाने का अवसर आता, तो संभवतः ख़ाँ साहब को भूखे ही लौटना पड़ता। खाना खाकर, ऊपर से पान खाने के बाद ख़ाँ साहब ने अपने कपड़े सँभाले। घड़ी में समय देखा, तो आठ बज गए थे। सोचा, पैदल चलना है, इसलिये जाते-जाते घंटा-आध घंटा लग ही जायगा। अतः राजा साहब के महल की राह ली। वहाँ पहुँचे, तो मालूम हुआ, नौ बजने में देर है। फाटक के बाहर ही सड़क पर एक पुलिया थी, ख़ाँ साहब उसी पर बैठकर ख़याली पुलाव पकाने लगे।

* * *

(७)

हृदय कपट, बर बेश धरि, बचन कहैं गढ़ि छोलि;
अब के लोग मयूर ज्यों, क्यों मिलिए मन खोलि?

—तुलसीदास

ठीक नौ बजे ख़ाँ साहब महल के फाटक में घुसे, और पोर्च में आकर खड़े हुए। द्वार पर जो नौकर था, उसकी सज-धज कोठी के वर्दीवाले नौकर से निराली थी। ख़ाँ साहब ने फिर अपनी इत्तिला राजा साहब को कराई। तुरंत ही उनका बुलावा भी आ गया।

एक बड़े कमरे में गद्दे बिछे हुए हैं, और उन पर दूध-सी सफ़ेद चादर बिछी है। दीवार के सहारे चारों तरफ़ सफ़ेद ग़िलाफ़-चढ़े गाव तकिए लगे हैं। राजा साहब ढीला पाजामा और सफ़ेद लखनऊ के काम का कुरता पहने एक तकिए के सहारे बैठे थे। उम्र २५-३० वर्ष के लगभग होगी। बदन छरेरा और रंग गेहुआ था, पर आँखें भीतर को धँसी हुई। चेहरे से यही मालूम होता था कि जो धनी बाप

के बेटे धन के मद में दुर्व्यसनों के चक्कर में पड़, अपनी आत्मा के साथ अपने स्वास्थ्य और शरीर को भी मिट्टी में मिला लेते हैं, उन्हीं में से वह भी हैं। आस-पास पाँच-सात और लोग बैठे थे, जो इनके दोस्त-अहबाब और मुसाहब प्रतीत होते थे। इनमें एक डॉक्टर और दो वकील हैं। कुछ नवयुवक भी खादी की पोशाक पहने बैठे हैं। ख़ाँ साहब के परिचित सज्जन इस मंडली में दिखाई न दिए, अतः आदाब बजा लेने के बाद ख़ाँ साहब एक तरफ़ चुपचाप बैठ गए।

राजा साहब ने खादीधारी नवयुवकों से पूछा—"कहो जी, कल के मेरे लेक्चर से लोगों पर कैसा असर पड़ा?"

उन्होंने उत्तर दिया—"सब ठीक, जैसा चाहते थे, वैसा ही मतलब पूरा हुआ।"

फिर राजा साहब ने कुछ आँख झपकाकर ख़ाँ साहब से कहा—"मैं आपसे ज़रा देर बाद बातचीत करूँगा। आप कुछ शौक़ करते हैं?"

ख़ाँ साहब तो मानो इसके लिये उधार खाए बैठे थे; तुरंत बोल उठे—"हुज़ूर के हुक्म से बंदे को कब इनकार हो सकता है।"

नौकर को आवाज़ दी गई, और बात-की-बात में वह एक तबक (ट्रे), जिसमें क़रीब आधे दरजन काच के गिलास और एक ख़ूबसूरत बोतल रक्खी थी, लेकर हाज़िर हुआ। राजा साहब ने अपने हाथ से उस बोतल की चीज़ को गिलासों में डाला। सोडा वाटर की बोतल खोलकर ख़िदमतगारों ने गिलासों में डाला। इस प्रकार गिलास भर-भरकर राजा साहब ने सारी मंडली को एक-एक करके दिए। पर एक वकील साहब ने न लिया। राजा साहब बोले—"अजी वकील साहब, आप भी ज़रा ज़िंदगी का मज़ा चखिए। इस जीती-जागती शक्ति के बॉयकॉट करने में क्या धरा है!"

वकील साहब उपेक्षा के स्वर में बोले—"यह नियामत जनाब को ही मुबारक हो।"

ख़ाँ साहब को भी एक गिलास इनायत किया गया, जिसे बड़े अदब

के साथ सलाम करके उन्होंने ले लिया। ख़ाँ साहब की रूहानी बदल गई। दिल में सोचा, यहाँ मेरा काम सोलह आना पूरा होगा।

गिलास की आधी चीज़ समाप्त कर लेने पर राजा साहब डॉक्टर साहब से बोले—"क्यों डॉक्टर साहब, उससे भी कुछ तय हुआ ?"

डॉक्टर साहब के कुछ कहने के पहले ही दूसरे वकील साहब बीच ही में कह उठे—"जनाब, डॉक्टर साहब अपने मरीज़ों से फ़ुरसत पाएँ, तब किसी बात की कुछ ख़बर उन्हें सूझे! हाँ, मैं वहाँ गया था, और उससे बातचीत भी हुई। जैसी तारीफ़ सुनी थी, वैसी ही निकली। मैंने आपका नाम लिया, और कहा कि ऐसी बड़ी जगह जाना है, तो कहने लगी—'अजी, हम तो ऐसे ही राजे-महाराजों को ख़ुश करने के लिये हैं, आप रुपए-पैसे का कुछ ख़याल मत कीजिए। हमें तो उनकी ख़िदमत करने का मौक़ा दीजिए।"'

सुनकर राजा साहब बड़े प्रसन्न हुए और गिलास से एक घूँट और चढ़ा, वकील साहब के हाथ-पर-हाथ मारकर बोले—"अमा, वाह यार! तो बस, सनीचर को तय करो। बड़ा लुत्फ़ रहेगा।"

ख़ाँ साहब यह सब वार्तालाप सुन, मन-ही-मन बोले—"बस, अपने तो यहाँ पौ-बारह रहेंगे।"

इस तरह एक दौर ख़त्म होते ही डॉक्टर साहब और उनके साथी वकील साहब ने आदाब ठोक बिदा ली। अब उन नवयुवकों का नंबर आया। राजा साहब ने फ़रमाया—"क्यों जी, देश-सेविकाओं की कैप्टन से आप लोग मिले थे? क्या जवाब मिला?"

एक नवयुवक ने जवाब दिया—"राजा साहब, अभी तो वह नाहीं-नुकर ही कर रही है, पर धीरे-धीरे रास्ते पर आ ही जायगी।"

राजा साहब ने मुस्किराकर कहा—"नहीं भाई! इस तरह काम नहीं चलेगा। इतना रुपया चंदे और दान में देने पर भी क्या उन पर असर नहीं हुआ? तुम्हें मैंने तरकीब तो बता ही दी है, अब जल्दी उन्हें राज़ी करो।"

युवकों ने कहा—"परमेश्वर चाहेंगे, तो जल्दी ही सब ठीक हो जायगा।"

यह कहकर उन्होंने हाथ जोड़, बिदा ली।

रात के ग्यारह बजे का समय हो आया था, और मंडली में घटते-घटते एक वकील साहब और ख़ाँ साहब ही रह गए थे। ख़ाँ साहब सोच रहे थे,—"अब राजा साहब आरामगाह में जाने को हैं, इसलिये अपनी बात कहने का मौक़ा भी मिलता नहीं दिखाई देता।" इतने ही में इनके जान-पहचान के मुसाहिब ने धीरे-धीरे हँसते हुए कमरे में प्रवेश किया। इन्हें देख राजा साहब तुरंत बोल उठे—"आपके दोस्त ख़ाँ साहब कब से बैठे इंतज़ार कर रहे हैं। आपका घर से निकलना अब हुआ है? ख़ैर, आप और ख़ाँ साहब बातचीत कीजिए, मैं ज़रा वकील साहब से कुछ काम की बातें करने अंदर दफ़्तर में जाता हूँ।"

अब ख़ाँ साहब ने समझा कि उनकी रात को क्यों तलबी हुई, आते ही किसलिये फ़ौरन् बुला लिए गए, और प्राइवेट मजलिस होते हुए भी बैठे रहने की कैसे इजाज़त मिली। इनके दोस्त ने इनके बारे में पेश्तर ही राजा साहब से कह दिया था, और राजा साहब इनकी हालत से वाक़िफ़ हो ख़ुद ही इन्हें अपनी मजलिस में शरीक कर अपना मतलब निकालने की फ़िक्र में थे।

दफ़्तर के कमरे में पहुँच, राजा साहब ने वकील साहब को एक पोशिसदार कुर्सी पर बड़े आदर-सत्कार से बिठाया। वकील साहब ने कहा—"राजा साहब, अब मामला और नहीं टल सकता। मेरे मुवक्किल ने मुझे सख़्त ताकीद की है कि अगर फ़ौरन् रुपया वसूल न हो, तो ज़ाब्ते की नालिश ठोंक दी जाय। आपके पिता के मित्र होने की वजह से मैंने अब तक जैसे भी टल सका, टाला, और आपको बदनामी से बचाया। मगर अब बग़ैर रुपए की सबील किए काम नहीं चल सकेगा।

राजा साहब ने मुँह बनाकर, पर बड़े नम्र भाव से उत्तर दिया—

"वकील साहब, आपको हमारे घर का सब हाल मालूम है। अभी पिताजी का स्वर्गवास हुए दो बरस नहीं हुए कि जितना नक़द रुपया उन्होंने छोड़ा था, सब ख़र्च हो चुका। आपको यह भी मालूम है कि वह कोई दस-बीस लाख तो था ही नहीं। सिर्फ़ दो-ढाई ही लाख था। बाप-दादे की इज़्ज़त बनाए रक्खे बग़ैर भी काम नहीं चलता। जागीर से जो कुछ आता है, वह भी आपको मालूम है। फिर आप ही सोचिए, इतना बड़ा क़र्ज़ा कैसे इतनी जल्दी अदा किया जा सकता है?"

वकील साहब ने मन-ही-मन कहा—"बेशक, दो-ढाई लाख रुपया क्या चीज़ है। तुम्हारे लिये तो क़ारूँ का ख़ज़ाना भी काफ़ी नहीं। बाप-दादे की इज़्ज़त भी ख़ूब बनाए रक्खी है। तुम्हारी आज रात की मंडली और उसकी करतूतें प्रत्यक्ष ही बता रही हैं कि तुम-जैसे सपूत बेटों को अपने बाप-दादा की मान-मर्यादा का कितना ख़याल रहता है। अव्वल तो किसानों की हालत ही नादारी की है। उस पर तुम्हारे लालची, नमकहराम कारिंदे ज़रूर तुम्हें जागीर से आमदनी लाकर सौंपेंगे। किसानों की खाल खींचकर और ख़ून चूसकर जागीर की क़ीमत ही दो कौड़ी की कर डाली, फिर उस पर से क़र्ज़ की भरमार। उधर तुम्हारी नुमायशी ख़ैरातें, मुँह-दिखाई के चंदे और बगुलाभगती की देश-सेवा के ख़र्चों से और इधर शराब, नाच-रंग, जुए और दुष्कर्मों से जब कुछ बचे, तभी तो कुछ हो सकता है। हे परमेश्वर! कैसा बुरा समय आ गया है। कितना बड़ा घराना धूल में मिला जा रहा है।"

फिर प्रकट में बोले—"राजा साहब, आपका जवाब मिल गया। अब मैं अपने मुवक्किल से कहे देता हूँ। जैसा वह उचित समझेंगे, करेंगे।"

राजा साहब ने जब इस तरह मामला पार पड़ते न देखा, तब कहा—"वकील साहब, आप तो हमारे ही हैं। ऐसी तरकीब करें, जिससे 'साँप मरे, लाठी न टूटे'—उनका रुपया अदा हो जाय, और

हमारी बात भी न बिगड़े। अब ऐसा करें कि सालाना क़िस्तों से अदाई हो जाय। इस साल तो नहीं, अगले साल से शुरू करके दस साल में सब रुपया अदा कर दिया जायगा। ऐसा ही इक़रारनामा अगर ठीक समझें, तो लिखकर ले आइए, मैं दस्तख़त कर दूँगा।''

वकील साहब ने सोचा, यदि अदालत में ही गए, तो क्या मिलना है? एक तो बरसों मुक़दमा लड़ने में लग जायँगे, और फिर इतना क़र्ज़ा लदा पड़ा है कि ऐसे वक़्त में जागीर बिके भी, तो आधा-परधा क़र्ज़ा मुश्किल से वसूल हो सकेगा। इसलिये जो यह कहता है, उसे ही मानने को अपने मुवक्किल से कहना ठीक होगा।

राजा साहब सोच रहे थे, यह साल तो किसी प्रकार टले, फिर आगे किसने लिया, और किसने दिया। ऐसी बीसियों दस्तावेज़ लिख डालीं। कौन-कौन आकर वसूल करेगा!

इस प्रकार दोनो ने ही अपने-अपने दिल में विचार बाँध आज की बातचीत समाप्त की। वकील साहब बोले—''राजा साहब, सब ऊँच-नीच सोच लीजिए; मैं अपने मुवक्किल से बातें करने के बाद आपसे फिर मिलूँगा।'' और वहाँ से चल दिए।

लौटने पर ख़ाँ साहब और उनके नए मित्र में जैसी घुल-घुलकर बातें घुट रही थीं, देखकर वकील साहब ताड़ गए कि कोई नया कुचक्र रचा जा रहा है। उन्होंने आते समय ख़ाँ साहब को बड़े ग़ौर से देखा।

नीचे उतर, गाड़ी में सवार हो वकील साहब घर चल दिए। आज की मंडली का दृश्य उनकी आँखों के सामने आ गया। मन में कहा,—''धन्य हो भगवान्! आपकी लीला आप ही जानो। इन ढोंगियों के मारे कौन सच्चा है, और कौन झूठा, इसका निर्णय करना भी असंभव-सा हो गया है। जिस समय यह राजा साहब पब्लिक-प्लेटफ़ार्म पर खड़े होकर 'स्वदेशी' और 'स्वराज्य' के लंबे-चौड़े व्याख्यान फट-कारते हैं, तो सारी जनता हृदय से गद्गद हो इनकी प्रशंसा में मस्त हो जाती है। वह बेचारी सोचती है कि इतना बड़ा जागीरदार होकर

भी हमारे हित की चिंता से निडर हो हमारी सेवा करने आया है, पर उसको क्या मालूम कि यह लोमड़ी भेड़िए के भेष में अपना मतलब गाँठने की फ़िक्र में है। यदि लोग आज इनके महल की मंडली में उपस्थित होते, तो उनका असली रूप देख सकते।" फिर विचार-धारा दौड़ी—"'खद्दरधारी' नवयुवक भी इनकी पाप-वासनाओं में सम्मिलित होकर इन्हें ही नहीं, स्वयं अपने को और अपने देश को भी पतन के गर्त में डाल रहे हैं। ठीक है, जब भारतवर्ष में लोग धर्मनिष्ठ थे, तब हर लंबे जटाधारी और गेरुए वस्त्रधारी को साधु-संत समझ सेवा-सत्कार करते थे। इस पर नक़ली साधु-संत बनना आरंभ हुए, और होते-होते यह हुआ कि अब हज़ार में एक तो वास्तविक साधु निकलता है, और नौ सौ निन्यानबे ढोंगी, चोर, उचक्के और अपना पेट भरनेवाले। और, फल-स्वरूप इस देश की इज़्ज़त ही जाती रही। जब से राजनीतिक हलचल प्रारंभ होकर देश में देश-भक्ति की जागृति हुई, तब से यही हाल उन कुछ लोगों का है, जिनका एकमात्र उद्देश रहता है धूर्तता से या जैसे हो, लोगों को लूटना और ऊपर से रोब गाँठे रहना। एक खद्दर की धोती और कुरता पहनना, और बन गए देश-हितैषी, लोक-सेवक! भीतर से वे क्या हैं, उनकी करतूत कैसी है, वह देश-सेवक हैं या देश-द्रोही, इसका पता उन्हें ही रहता है, जो उन्हें अंदर से जानते-पहचानते हैं—बाहर जनता को तो वे अपने आडंबर में अच्छी तरह फँसा ही लेते हैं। इन लोगों के घृणित कार्यों से परिचित होने पर जैसे आजकल वेशधारी साधुओं पर, चाहे उनमें कोई सच्चा साधु ही क्यों न हो, विश्वास नहीं रहा, खादीधारियों में भी कौन सच्चा है तथा कौन धूर्त, इसकी पहचान न होकर सभी पर से विश्वास उठ जायगा।" वकील साहब ने निश्चय किया कि इस मंडली के खादीपोश नवयुवक भी उसी श्रेणी के होंगे। उनसे और राजा साहब से देश-सेविकाओं की मुखिया (कैप्टन) के बारे में जो बातचीत हो रही थी, उसका जब ध्यान इन्हें आया, तो समझ गए कि

ये दुष्ट किसी बेचारी गृहस्थ अबला का, जो देश-भक्ति के भावों से प्रेरित हो देश-सेवा के लिये देश-सेविका बनकर आई है, सतीत्व नष्ट कराने के उद्योग में लगे हैं। हाय भारत! तेरा यह दुर्भाग्य कि जो स्त्री-रत्न लज्जा और संकोच के वश घरों के क़िलों के अंदर बंदी बनकर रहता था, जो तुझ पर दुस्समय आया जानकर अपनी बेड़ियाँ तोड़, कुल की लाज खूँटी पर टाँग, सेवा करने को—तुझे डूबने से बचाने को—तन, मन और धन से उपस्थित हो बाज़ारों में फिरने, मरदों से झगड़ने तथा आख़िर में सच्चे बंदीगृह जाने को तैयार हो गया, उस पर तेरी दूसरी संतानों को अपने घृणित कार्यों से क्षोभ उत्पन्न नहीं हुआ, और वे इस नई योजना से शिक्षा ग्रहण करने के बदले उल्टे अपने स्वार्थ और वासनाओं के केंद्र बनने लगे। धिक्कार है ऐसी प्रकृति के व्यक्तियों को!

वकील साहब की विचार-शृंखला एक झटके के साथ टूटी, जब गाड़ी घर के दरवाज़े पर रुकी। वह उतरकर कमरे में जा पलँग पर लेट गए, और उन्हें शीघ्र ही नींद आ गई।

* * *

(८)

नशा दौलत का बद अतवार को जिस आन चढ़ा ;
सर पै शैतान के एक और भी शैतान चढ़ा ॥
—ज़ौक

राजा साहब जब वकील साहब से निपटकर बाहर निकले, ख़ाँ साहब और उनके मित्र गद्देवाले कमरे में उपस्थित थे। उनके आते ही दोनो उठकर खड़े हो गए। राजा साहब ने तकिए से टिककर अँगड़ाई ली, और फिर नौकर को आवाज़ दी। फिर वही बोतल-

वासिनी का दौर आरंभ हुआ। राजा साहब ने डाटकर एक गिलास खुद अपने लिये भरा, और एक-एक शमशेरखाँ तथा उनके मित्र को दिया। नियमानुसार तीनों ने गिलासों को ऊपर उठा एक दूसरे के लिये 'गुडलक' चाही। इसके बाद राजा साहब ने ख़ाँ साहब की तरफ़ मुड़कर कहा—"आपकी तारीफ़ तो मैं इनसे सुन चुका हूँ, पर आप खुद भी तो कुछ अपनी ज़बान से फ़रमाइए।"

ख़ाँ साहब ने सलाम किया, और बोले—"यह तो हुज़ूर की बंदा-परवरी है, मैं तो हुज़ूर का नाचीज़ ख़ादिम हूँ। मैंने नवाब सआदत-अली ख़ाँ के यहाँ मुलाज़िमत कर ली थी। पर हुज़ूर, क्या कहूँ, थोड़े अर्से में ही तंग आ गया। कहने को नवाब हैं, मगर सच पूछिए, तो बस हुज़ूर····· मेरी ज़बान से उनकी तारीफ़ में लफ़्ज़ नहीं निकलते। ऐसे शख़्स की मुलाज़िमत करना अपने आपको ज़लील करना था। बस, ख़ुदा-ख़ुदा करके वहाँ से अपना पीछा छुड़ाया। हुज़ूर का नाम तो दुनिया-भर में मशहूर है। सोचता था, मेरी क़िस्मत कहाँ, जो ऐसे मालिक की क़दमबोसी कर सकूँ। मेरे मेहरबान दोस्त अकमलख़ाँ (दोस्त की तरफ़ इशारा करके) ने सहारा दिलाया, और बंदा हुज़ूर की ख़िदमत में हाज़िर हो सका। हुज़ूर ने जो चंद घंटों में इस नाचीज़ को इज़्ज़त बख़्शी, उससे तो मुझे कामिल इत्मीनान हो गया कि मैं मरते दम तक हुज़ूर के क़दम न छोड़ूँगा, और इसी दर पर पड़ा रहकर अपनी ज़िंदगी काट दूँगा।"

राजा साहब इन चिकनी-चुपड़ी बातों से ख़ाँ साहब पर लट्टू हो गए। बोतल-वासिनी तो सिर पर सवार थी ही, उन्हें और इनके दोस्त को क़रीब बुलाया, और फिर इनमें धीरे-धीरे कानाफूसी आरंभ हो गई।

हमने जो सुना, उससे यही मालूम हुआ कि इस पतित ख़ाँ ने जिस प्रकार नवाब से ललिता की तारीफ़ कर उसे फँसाने की बातचीत की थी, उसी प्रकार इसे राजा साहब से भी बातें बनाईं। क्योंकि बड़ी

देर बातचीत के पश्चात् राजा साहब ने लड़खड़ाती आवाज़ में कहा—"बस, तो इस काम को जल्द करो। तुम्हारे दोस्त तुम्हें 'जादूघर' बतला देंगे। वहीं उसे लाकर भूतों के हवाले कर दो। मगर इस बात का ख़याल रहे कि किसी को कानोंकान ख़बर न होने पाए तुम अपने मावज़े के लिये मुतलक़ फ़िक्र न करना। अच्छी तरह ख़ुश कर दूँगा।"

शमशेरख़ाँ ने उत्तर दिया—"हुज़ूर, यह क्या फ़रमाते हैं? बंदे ने तो अब क़दम पकड़ लिए हैं, जिस तरह चाहे रखिए, और हुज़ूर, यह काम तो बंदे के बाएँ हाथ का खेल है।"

अकमलख़ाँ ने कहा—"ख़ाँ साहब, अब चलिए, मालिक को भी सोने में देर हो रही है। कल सुबह मुझसे मिलिएगा, तो 'जादूघर' दिखा दूँगा, और वहाँ के भूतों से भी मिला दूँगा।"

शमशेरख़ाँ अकमलख़ाँ को वहीं छोड़, चल दिए। सोचने लगे कि मालिक को तो सोने में देर ज़रूर होती होगी, पर यह दोस्त साहब अब भी नहीं टले, तो क्या यह मालिक के सो जाने पर उनका पहरा देंगे। मगर इनके दरवाज़े से निकलते वक़्त, जब बाहर से एक ताँगा दरवाज़े में घुसता हुआ दिखाई दिया, और उसमें बैठी बाज़ारी तवायफ़ को इन्होंने देखा, तब ख़ाँ साहब समझ गए कि दोस्त क्यों इन्हें टाल बताकर ख़ुद वहाँ जमे रहे। मन-ही-मन कहने लगे—"वाह रे दोस्त, तुम भी ख़ूब निकले!"

ख़ाँ साहब उक्त घटनाओं से और भी प्रसन्न हुए। सोचने लगे—"यहाँ अपनी ख़ूब पटेगी।"

* * *

जो कानाफूसी ख़ाँ साहब और राजा साहब में हुई थी, उसमें ललिता को गाँव से उड़ाकर लाने का सारा कार्य-क्रम निश्चय किया

गया — राजा साहब की मंडली के डॉक्टर साहब ख़ाँ साहब को एक दवा देंगे। 'जादूघर' से चार आदमी ख़ाँ साहब के साथ गाँव जायँगे। ये सब आधी रात को चुपचाप गाँव में पहुँचकर उस घर में पहुँचेंगे, जहाँ ललिता रहती है। ख़ाँ साहब धीरे से ललिता की खटिया के पास पहुँच, उस दवाई को रूमाल में छिड़क ललिता की नाक के पास रख देंगे, और जब वह बेहोश हो जायगी, तब उसे दो आदमी उठा ले जायँगे। गाँव के बाहर दूसरे दो आदमी घोड़े लिए तैयार खड़े रहेंगे। उन पर सवार होकर सब-के-सब 'जादूघर' में दाख़िल हो जायँगे। इन आदमियों के कपड़े डरावने भूतों के-से होंगे, जिससे कोई देख भी ले, तो डर जाय। ख़ाँ साहब के चेहरे पर नक़ाब चढ़ा होगा।

सारा काम इसी कार्य-क्रम के अनुसार किया गया, और बिना किसी विघ्न के पूरा भी हुआ। बेचारी ललिता सोते-सोते इस प्रकार उड़ाई जाकर इन भूतों के पल्ले पड़ 'जादूघर' में लाई गई, और पीछे-पीछे जीते-जागते भूत ख़ाँ साहब ने भी 'जादूघर' में प्रवेश किया।

इस गुप्त रीति से, भूत-लीला करके, ललिता को ग़ायब किया गया कि उसके घरवालों या गाँववालों में से किसी को ज़रा भी पता न चलने पाया, और यह सब रहस्य ही बना रहा। गाँव भर में ढूँढ़ने-ढाढ़ने पर भी ललिता कहाँ गई, इसका पता न चल सका। बूढ़े मेहते नवलसिंह और उनके पुत्र देवीसिंह गाँव छोड़कर उसकी तलाश में भटकने लगे।

(६)

आन में फ़र्क़ न आने दीजे;

जान अगर जाय, तो जाने दीजे।

—अनीस

ललिता को जब होश आया, और उसने आँखें खोलीं, तो देखा, वह एक विचित्र स्थान पर है। न उसकी कुटी है, न टूटी चारपाई। इधर-झाँका, तो न कक्का है, न भैया। सोचा, सपना देखती हूँ। आँखें बंद कर लीं, और फिर दोनो हाथों से ख़ूब मलकर खोलीं। देखती है वही पहलेवाला दृश्य! एक ख़ूबसूरत, सजा-धजा कमरा है। ज़मीन पर बढ़िया क़ालीन बिछा हुआ है। दीवारों पर तरह-तरह के सुंदर चित्र टँगे हैं। दरवाज़ों पर मोटे रेशमी परदे पड़े हैं। बड़ा भारी, मख़मल के गद्दे का, कमानीदार पलँग है। वह पलँग पर से उठी। हाथों से मुँह टटोला, पाँवों पर हाथ फेरा, फिर इधर-उधर देखा। सपना नहीं, तो यह क्या है? फिर आँखें बंद करके ध्यान किया। किसी समय इसकी मास्टरानी ने 'इंदर-सभा' की कहानी सुनाई थी। उसे वह याद आ गई। क्या ऐसी ही कोई लीला है? वहाँ 'सब्ज़ परी' ने 'गुलफ़ाम' को अपने देवों से उठवा मँगाया था, यहाँ किसने मुझे उठवा मँगाया है। यही सब सोचकर पलँग में सिर गड़ा रोने लगी। हाय! मेरे पिता और भाई जब मुझे कुटी में न पाएँगे, तो उनका क्या हाल होगा। रोते-रोते घिग्घी बँध गई। थक जाने पर जब रोना बंद हुआ, तो फिर आँखें खोलीं। फिर वही ठाट-बाट दिखाई दिया। ललिता बचपन से ही गाँव में रही थी, उसे ऐसे सुसज्जित घर तथा कमरों को देखने का अवसर कभी न मिला था। अतः यह मनुष्य-लीला है या भूत लीला, समझ न सकी। फिर कुछ ज्ञान आया, कहीं ऐसा तो नहीं कि मैं दुःख

से पागल हो गई हूँ, और मुझमें विवेक-शक्ति ही न रही हो। इसी प्रकार तरह-तरह के विचार मन में आए। घबराकर परदा हटा दरवाज़ा खोलना चाहा, पर वह बाहर से बंद था। आख़िर निराश हो पलँग के पास नीचे ज़मीन पर बैठ गई। तभी सूर्य की किरणें खिड़की से होकर कमरे में प्रवेश करने लगीं।

ललिता को ज़रा धैर्य आया। सोचा, जब स्वयं सूर्य भगवान् मेरी रक्षा को आ रहे हैं, तब डरने की कोई बात नहीं। उसने वहीं ज़मीन पर आसन लगा, दोनो हाथ जोड़ सूर्य भगवान् की आराधना की, और कहा—"हे देव! मेरी रक्षा करो।"

इसी समय दरवाज़ा खुलने की आवाज़ हुई, और किसी के आने की आहट सुनाई दी। वह सहमकर, डर के मारे, एक कोने में जा खड़ी हुई। देखती क्या है, सामने से सिर से पैर तक काले वस्त्र पहने दो भूत-से आ रहे हैं। उनकी केवल आँखें चमकती थीं। एक के हाथ में लोटा और गिलास था, और दूसरे के हाथ में कुछ फल तथा भोजन की सामग्री। उन्होंने वह सामान पलँग के पास पड़ी हुई संगमरमर की मेज़ पर रख दिया। उन्हें देखते ही ललिता भय से थर्रा उठी, और काँपते हुए हाथों से किवाड़ की चौखट पकड़, भीत की तरफ़ मुँह छिपाकर खड़ी हो गई। इन दोनो भूतों के पीछे शमशेरख़ाँ भीतर घुसा, और उन दोनो से बाहर दरवाज़े की रखवाली करने को कह ललिता के पास जाकर बोला—"छोकरी, तू मुझे पहचानती है! देख, मैं वही हूँ, जिसने तेरे ज़ेवर तुझे वापस दे दिए थे। डर मत, अब तू ख़ूब ऐशोआराम कर। बहुत दिन तक गाँव की झोपड़ी में पड़ी सड़ा की। अबय हाँ रानी बनकर महल का मज़ा चख, और चैन से दिन गुज़ार।"

ललिता ने यह परिचित स्वर सुन, मुँह फेरकर देखा, तो वही ख़ाँ साहब मौजूद थे। आँखों के सामने उस दिन का गाँव का सारा

दृश्य घूमने लगा। ललिता को घृणा उत्पन्न हुई, और क्रोध भी। पर जब इस निर्लज्ज ने उपर्युक्त बातें मुँह खोलकर कह डालीं, तब ललिता समझ गई कि वह बड़े पापियों और बदमाशों के चक्कर में पड़ गई है। अब इसे ज्ञात हुआ कि यह न तो स्वप्न है, न पागलपन, और न 'इंदर-सभा' के समान देवों के उड़ा ले जाने की बात। यह तो इन्हीं नारकीय संसार के पैशाचिक-जीवों का पाप-कर्म है। काँपते हुए ललिता ने कहा—"मैं आपके कहने का मतलब कुछ नहीं समझी। आप मुझे मेरे गाँव से यहाँ क्यों उठा लाए हैं, और मुझे मेरे घर कब भेजेंगे ?"

इस पर शमशेरखाँ ठठाकर हँसा, और बोला—'अब तुम इसे ही अपना घर समझो, और यहाँ चैन से रहो। घर जाकर क्या करोगी ?'

ललिता को क्रोध तो आया, पर भय भी बहुत लगा। ये बातें उस अबोध, ग्रामीण बालिका को भयभीत करने के लिये पर्याप्त थीं। घबराकर बोली—"नहीं मुझ ग़रीब पर दया करो। मुझे मेरे घर भेज दो।"—और ज़मीन पर गिर, बेहोश हो गई।

ललिता को जब होश आया, तो देखा, एक स्त्री उसके पास बैठी पंखे से धीरे-धीरे हवा कर रही है। ललिता ने उठकर बैठना चाहा, पर उठा न गया। एकाएकी जो असाधारण बातें उसने देखीं और सुनीं, उनसे दिल पर ऐसा धक्का लगा कि अगर वह गाँव की रहनेवाली और स्वाभाविक सबल न होती, तो कभी की मौत के हवाले हो गई होती। उसे उसी समय से बड़ा तेज़ ज्वर चढ़ा। तीसरे दिन कुछ होश आया। ज्वर इस समय भी था, केवल तेज़ी में कमी हो गई थी। ललिता को कुछ ज्ञान न था कि तीन दिन बीत गए हैं या तत्क्षण ही होश में आई है। उसे यह भी नहीं मालूम कि कौन-कौन इस अवसर में वहाँ आया-गया, अथवा कौन उसका उपचार कर रहा है। जैसे कोई सोया हुआ मनुष्य जगाने पर इधर-उधर देखता है, वैसे ही ललिता उस स्त्री की ओर देखने लगी। उससे बातचीत भी करनी चाही, पर इतनी निर्बल

हो गई थी कि मुँह से बात भी नहीं निकल सकी। जब स्त्री ने देखा कि उसने आँखें खोलीं और उठने का प्रयत्न कर रही है, तब उसके सिर पर हाथ फेरकर बोली—"अभी तुम बहुत कमज़ोर हो।" निश्चय-पूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि ये शब्द भी ललिता ने सुने या नहीं। उसने फिर आँखें मूँद लीं।

यह स्त्री, जो पंखा झल रही थी, कौन थी? सिवा नौकरानी के और कौन हो सकती है, और नौकरानी भी उन्हीं कुटिल मनुष्यों की, जिन्होंने बेचारी अबोध बालिका को इस घर में बंदी कर रक्खा था। कैसा भी कठोर मनुष्य क्यों न हो, उसके जीवन में किसी-न-किसी समय दया का स्रोत अवश्य ही उमड़ पड़ता है। इस दीन बालिका की यह दशा देख उस स्त्री का हृदय भी दया और सहानुभूति से पिघल गया। उसने उसकी ओर सच्ची प्रेम-दृष्टि से देखा, और उसका मन रो उठा—"हाय! कैसी सुंदर बालिका को ये नीच इस प्रकार कष्ट दे रहे हैं! हे भगवान्, इस पाप का क्या परिणाम इन्हें मिलेगा?" तभी दरवाज़ा खुला, और एक डॉक्टर ने, जो राजा साहब की उस रात की मंडलीवाले ही मालूम होते थे, प्रवेश किया, और घबराई हुई आवाज़ में सेविका से पूछा—"कुछ होश आया?" उसने जो हाल था, कह सुनाया।

सुनकर डॉक्टर साहब को ज़रा संतोष हुआ, और फिर वह अपने रबर की नलीवाले यंत्र से रोगी की परीक्षा करने लगे। इसी समय बाहर मोटर आने की आवाज़ सुनाई दी, और कुछ क्षण बाद ही राजा साहब और ख़ाँ साहब आकर कमरे में खड़े हो गए। राजा साहब की आकृति से मालूम पड़ता था कि उन्होंने रोगी को इससे पहले देख लिया था, और उसके शीघ्र अच्छे हो जाने के आकांक्षी थे। उन्होंने डॉक्टर साहब से कई प्रश्न किए। अनुकूल उत्तर मिलने पर ज़रा प्रसन्न-से दिखाई दिए। ख़ाँ साहब चुपचाप हटकर खड़े रहे। उनके चेहरे पर घबराहट के चिह्न दिखाई पड़ते थे। वह मन-ही-मन सोच

रहे थे—"यदि यह लड़की मर गई, तो मेरी सब उम्मीदों का ख़ून होगा, और मेरी बनी-बनाई योजना बिगड़ जायगी, क्योंकि फिर राजा साहब मेरी बात ही क्यों पूछने लगे !"

किसी समय वैरी भी—चाहे वे अपना हित साधने को ही क्यों न हों—शुभाकांक्षा करने लगते हैं। इन लोगों की भी रोगी के प्रति वैसी ही भावना थी। देख-भाल के बाद ये दोनो और डॉक्टर साहब वहाँ से बिदा हुए। चलते समय उस नौकरानी को आदेश करते गए—"देखो, बीमार की अच्छी तरह ख़बरदारी रखना। जो दवाएँ दी हैं, उन्हें नियत समय पर देती जाना। और जो मुसम्मी का रस और दूध बतलाया है, उसे भी बराबर पिलाती जाना। यदि कोई नई बात पैदा हो, तो तुरंत ख़बर देना।"

इसी प्रकार बेचारी रोग-ग्रस्त ललिता ने रोग-शय्या पर चालीस दिन तक पड़े रहकर दुःख भोगा, तब कहीं ज्वर ने पीछा छोड़ा। बीच-बीच में जब होश आया, उसने उस स्त्री को अपने पास देखा। बातचीत और परिचय न होते हुए भी एक प्रकार से उसे वह स्त्री परिचित-सी मालूम पड़ने लगी।

ललिता इस बीमारी से अत्यंत निर्बल और दुर्बल हो गई। उठने-बैठने की शक्ति बिलकुल न रही। रात को जब आँखें खुलीं, और सिर में ज्ञान-शक्ति ने फिर प्रवेश किया, तब उसे अपनी परिस्थिति का बोध हुआ। उसने चुपके-से पलँग से उठने का प्रयत्न किया। विचार-शक्ति ने बदन में कुछ शक्ति-सी उत्पन्न कर दी। वह किसी वस्तु का सहारा ले उठी, और कमरे में चलने लगी। एक दरवाज़े के पास जा, जब उसने खोलने का प्रयत्न किया, तो ज़रा ही सहारे से वह खुल गया। वहाँ से दूसरे कमरे में पहुँची, तो देखा, वह कमरा, जिसमें वह अब तक क़ैद थी, उससे बहुत बड़ा था। इसमें चमकते हुए कपड़ों से मढ़ी कई बैठने की कुरसियाँ और तख़्त-से (जिन्हें हम 'सोफ़ा' या

'सेटी' कहते हैं) बिछे थे। इधर-उधर उसे कई बार कई तरह के आदमी खड़े और बैठे दिखाई पड़े, और कहीं-कहीं आदमी के भेजों की हड्डियाँ भी रक्खी दिखाई दीं। उसे फिर डर-सा लगा। एक कुरसी पकड़, वहीं ज़मीन पर चीख़ मारकर बैठ गई। सोचा, यह अवश्य 'भूतों का घर' है, और यह सब 'भूत-लीला' ही है। बड़ी देर तक बैठे रहने पर भी जब कोई उसकी तरफ़ न तो बढ़कर आया, और न कोई कुछ बोला ही, तब उसका फिर साहस बढ़ा। वह उठकर खड़ी हो गई, और देखने लगी कि उसमें से कोई उसके पास आता और कुछ बोलता है या नहीं। जब बड़ी देर तक कुछ भी न हुआ, वह हिम्मत कर आगे बढ़ी। तब उसे प्रतीत हो गया कि ये सब निर्जीव हैं, इसने जाकर एक को छुआ, तब भी वह न हिला। अब उसके हृदय में और शक्ति उत्पन्न हुई, और समझ गई कि ये सब बड़े-बड़े खिलौनों की तरह हैं। लड़की तो थी ही, कुछ देर तक खिलौना समझ उनसे खेलने और हँसने लगी। आज इतने दिनों बाद यह पहला ही अवसर था कि उसके अधरों पर हँसी दिखाई पड़ी। वह और आगे बढ़ी, और दरवाज़े के पास जा परदा उठाया। दरवाज़ा काच का होने से अब उसे बाहरी दृश्य दिखाई पड़ने लगा। उसने दरवाज़ा खोलने का भी प्रयत्न किया, पर खुला नहीं। उसने देखा, बाहर एक बड़ा मनोरंजक बाग़ है। ऊपर एक रोशनदान खुला हुआ था, उससे हवा का झोंका आया, जिसने उसके मस्तिष्क में और भी शक्ति उत्पन्न कर दी। वह वहाँ सहारा ले बहुत देर तक खड़ी रही, और जब थकान अधिक मालूम होने लगी, अपने पलँगवाले कमरे में लौट आई, और लेट गई। अब उसने सारी घटनाओं पर विचार किया, उसने निश्चय किया कि यहाँ भूत-पिशाच कोई नहीं, केवल उसे डराने के लिये ये सब करतूतें की गई हैं। उसे यह भी मालूम हो गया कि उसे बुरी नीयत से ही यहाँ लाकर क़ैद किया गया है। उसने हिम्मत और पराक्रम से काम लेने का निश्चय किया। उसने भगवान् का ध्यान किया—"हे श्रीकृष्ण भगवान्! जैसे

आपने दीन द्रौपदी की लज्जा रख ली, वैसे ही मेरी भी रक्षा करो।"
फिर निद्रा-वश हो सो गई।

* * *

(१०)

यह कौन जाने कि कल किया क्या,
और आज मालिक वो क्या करेगा?
किसे बिगाड़े, किसे सँवारे,
किसे लुटावे, किसे भरेगा?

—नज़ीर

प्रातः जब आँख खुली, तो ललिता ने उसी स्त्री को पूर्ववत अपने पास बैठे देखा। करवट लेकर वह उठी और उसके गले से चिपटकर फूट-फूट कर रोने लगी। नौकरानी उसके मन की व्यथा समझ गई। वह समझ गई, यह सच्चरित्र है, पर अबोध और अनुभव-रहित होने के कारण बेचारी यह निश्चय नहीं कर पा रही है कि ऐसे समय में क्या करना चाहिए। उस स्त्री का हृदय भी करुणा और प्रेम से उमड़ आया। वह उसके सिर पर हाथ फेरने तथा ढाढ़स बँधाने लगी। ललिता को ऐसा जान पड़ा, मानो उसकी सगी मा फिर जीवित हो उसकी रक्षा के लिये आ बैठी हो।

उसने बड़े दीन और करुण शब्दों में कहा—"माता, तुम्हीं मेरी रक्षा करो।"

स्त्री ने आश्वासन देकर कहा—"बेटी, धीरज धरो, परमेश्वर अवश्य तुम्हारी सहायता करेंगे। अभी तुम चुपचाप रहना, आज दो-पहर को मैं तुमसे बातचीत करूँगी।"

इसी समय बाहर मोटर आ पहुँची, और डॉक्टर, राजा साहब और ख़ाँ साहब, तीनो उतरकर उस कमरे में आ गए। ललिता ने जागते रहने पर भी आँखें बंद कर लीं। रोज़ की तरह डॉक्टर साहब ने उस नौकरानी से सारा हाल पूछा। उसने उत्तर दिया—'ज़रा देर हुई, आँखें खोली थीं, पर मुँह से कोई बात नहीं कर सकीं, और फिर आँखें बंद कर लीं।"

ललिता ने स्त्री का यह कहना सुना, और यह जानकर कि जो बातें उससे हुई थीं, उन्हें उसने छिपाया, मन-ही-मन प्रसन्न हुई। उसे ढाढ़स बँधा कि जो कुछ उसने कहा है, वह अक्षरशः सच है, और वह मेरी सहायता अवश्य करेगी।

डॉक्टर साहब ने इसके मुँह में थर्मामीटर लगाकर ज्वर की जाँच की, और बड़ी प्रसन्न मुद्रा से सबकी ओर देखकर कहा—"बुख़ार ने तो पीछा छोड़ दिया। इस समय बिलकुल नहीं है।" फिर रबर की नलीवाले यंत्र को अपने कान से लगाकर कहा—"और कोई ख़राबी भी दिखलाई नहीं देती। अब तो सिर्फ़ कमज़ोरी रह गई है।"

राजा साहब ने बड़ी उत्सुकता से पूछा—"डॉक्टर साहब, अब यह बिलकुल ठीक कब तक होगी?"

डॉक्टर ने कहा—"यह इसकी प्रकृति पर निर्भर है। यदि सब बातें ठीक रहीं, और दवा तथा पथ्य, दोनो ठीक-ठीक चले, तो एक महीने में बिलकुल अच्छी हो सकती है।"

ललिता ये सब बातें आँखें बंद किए सुनती रही।

तत्पश्चात् सबने प्रस्थान किया। जाते समय डॉक्टर ने कहा—"राजा साहब, अब मेरे रोज़-रोज़ यहाँ आने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। यह रोगी की सेवा करनेवाली परिचारिका सब देख-भाल करती रहेगी। मैं भी हफ़्ते में एक आध दफ़ा आकर देख जाया करूँगा। रोगी को पूर्णतया विश्राम की नितांत आवश्यकता है, इसलिये

अब एक महीने तक किसी को यहाँ आकर इसे छेड़ना नहीं चाहिए। अलबत्ता सुबह-शाम इसे ताज़ी हवा मिलनी चाहिए।"

इसके बाद राजा साहब और डॉक्टर साहब ने नौकरानी से अलाहिदा कोने में ले जाकर कहा—"तुम दो-एक रोज़ बाद इसकी आँखों पर पट्टी बाँधकर सुबह-शाम थोड़ी देर के लिये बाग़ में टहला लाया करो। मगर इस बात की पूरी खबरदारी रखना कि पट्टी खुलने न पाए, और यह कहाँ है, इसका भेद भी इसे न मालूम होने पाए।"

सब लोगों के साथ नौकरानी भी बाहर चली गई। ललिता भी थोड़ी देर तक तो आज की बातों पर मन-ही-मन विचार करती रही, फिर कमज़ोरी के कारण उसे नींद आ गई।

❀ ❀ ❀

दोपहर को नौकरानी एक गिलास में दूध और एक प्याले में अनार का रस लेकर आई। ललिता भी सोकर उठ चुकी थी। उसने प्रसन्न-मुख उसका स्वागत किया। स्त्री ने आँख के इशारे से उसे चुप रहने को कहा, और पास बैठकर प्याले का अर्क़ और दूध पिलाया। फिर दरवाज़े पर जा बाहर की ओर झाँका, लौटकर किवाड़ भीतर से बंद किए, और आकर बालिका के सिर पर सप्रेम हाथ फेरा। बोली—"भगवान् तुम्हें सदा सुखी रक्खें। बेटी, इन नीचों ने तुम्हें बुरी नीयत से यहाँ घेर रक्खा है। ये बड़े पापी लोग हैं। अब तक तो भगवान् ने तुम्हारी रक्षा की है। डॉक्टर ने महीने-भर की और मियाद दी है। इस बीच ही तुम्हारे बचाने की तरकीब होनी चाहिए।"

यह सुन ललिता ने कहा—"मा! तुम्हीं कोई तरकीब निकालो। यदि इनमें से किसी ने मेरा शरीर भी स्पर्श किया, तो मेरा जीवन नष्ट हो जायगा।" फिर ज़रा साहस कर कहा—"वैसे तो मैं शक्ति-भर न होने दूँगी। मेरे उँगली भी लगाई कि जान दे दूँगी।" फिर हाथ जोड़

कर बोली—"तुम मुझे कहीं से एक कटार ला दो, वक्त बेवक्त काम आएगी।"

स्त्री का दिल ये बातें सुन दहल गया। उसने बालिका को गले लगाकर कहा—'बेटी, तुम ऐसा विचार मत करो। अभी तुम कमज़ोर हो, इसलिये चुपचाप रहकर स्वास्थ्य-लाभ कर लो। ऐसा अवसर मैं कभी न आने दूँगी। तुम्हारा बिगाड़ होने के पहले मैं अपनी जान दे दूँगी।"

फिर उसने चुपके-से आँखों पर पट्टी बाँधने की बात उससे कह सुनाई, और कहा—"अभी तो एक महीना पड़ा है। भगवान् चाहें, तो पल-भर में सब कुछ कर सकते हैं। तुम अब बेखटके रहो, मैं तुम्हारे निकालने की तरकीब सोचती हूँ।"

(११)

बेगुनह ज़ुल्म से हो जाते हैं अक्सर मजबूर;
मगर इंसाफ़ का दरबार भी होता है ज़रूर।

—चकबस्त

इस तरह तीन सप्ताह व्यतीत हो गए। सेविका रोज़ झूठ-मूठ ललिता की आँखों में पट्टी बाँधकर बाहर टहलाने बाग़ में ले जाती। चार पहरेदार दूर-दूर से इन पर आँख रखते। इतने दिनों खाने-पीने और स्वच्छ हवा में फिरने से ललिता फिर पहले की-सी स्वस्थ बालिका हो गई। अब निर्बलता न रही, और चेहरा भी दमकने लगा। एक दिन उसने अपनी सारी रामकहानी उस नौकरानी से कह सुनाई, और अपने पिता तथा भाई से बिछुड़ने का हाल भी कहा। कहते-

कहते उसका दिल भर आया। वह उससे चिपटकर, फूट-फूटकर रो पड़ी।

स्त्री ने उसे ढाढ़स दिया, और कहा—"घबराओ मत मैंने सब ठीक कर लिया है। परमेश्वर ने चाहा, तो दो-एक रोज़ में ही मैं तुम्हारा यहाँ से छुटकारा कराए देती हूँ। पर यह सब काम बड़ी सावधानी से करना पड़ेगा। यहाँ मुझ पर भी बड़ी देख-भाल रक्खी जाती है। सदा चार पहरेदार मेरे ऊपर आँख रखते हैं। ज़रा-सी भूल से मेरी जान चली जायगी, और तुम्हारी भी ख़ैर नहीं।"

इस पर बालिका यह सोचकर कि मेरी वजह से इस बेचारी को कहीं मुसीबत में न पड़ना पड़े, कह बैठी—"माताजी! मेरे कारण तुम क्यों विपत्ति में पड़ती हो। मुझे केवल एक कटार ला दो, मैं अपनी जीवन-यात्रा समाप्त करूँ। मैं बड़ी अभागी हूँ; जहाँ रहती हूँ, वहीं का सत्यानास करती हूँ। मैंने अपनी मा को खा लिया। बाप-भाई की भी मेरी वजह से न मालूम क्या हालत होगी। मुझे अब इस संसार में जीकर क्या करना है।"

इन वाक्यों ने स्त्री का दिल और भी दहला दिया। अवरुद्ध कंठ से बोली—"बेटी, मेरी जान में जब तक जान है, तुम्हें बचाऊँगी। अच्छा काम करने में डर काहे का? तुम्हें बचाकर मैं मर भी जाऊँ, तो कोई चिंता नहीं, और फिर दुनिया से सत्य बिलकुल उठ नहीं गया है। तुम्हें बचाने में भगवान् मुझे सहायता देंगे। मैंने भी इस संसार में बड़े-बड़े पाप-कर्म किए हैं, और अब भी पाप-कर्म के लिये ही यहाँ नियत की गई हूँ। तुम बालिका नहीं, साक्षात् देवी हो। तुम्हारे ही कारण मेरे पिछले पाप धुल जायँगे।" यह कहकर वह भी दिल खोलकर रोने लगी।

रात के नौ बजे थे। अँधेरी रात थी। एक पेड़ के नीचे एक नंग-धड़ंग मनुष्य, जो जाँघों तक एक कपड़ा बाँधे है, और एक स्त्री,

जो अधेड़अवस्था से कुछ ही अधिक होगी, चुपचाप बातें कर रहे हैं। अंत में उस आदमी ने कहा—"रात को ग्यारह बजे मैं सड़क पर इक्का लाकर खड़ा रक्खूँगा, तुम दक्खिन दरवाज़े से निकल जाना। यह चाबी लो। बाक़ी सब दरवाज़ों पर द्वारपाल सोते हैं, इस दरवाज़े से मैं फूल-पत्ते लगाने आता हूँ। मैं तुम्हें बाहर लता-कुंज में, जो इस दरवाज़े से जुड़ा हुआ है, मिल जाऊँगा। पर देखो, बड़ी सावधानी से सब काम करना, अन्यथा हमारी-तुम्हारी, सबकी जान जायगी।"

यह कहकर उस मनुष्य ने कपड़ों की एक पोटली-सी उसके हवाले की, और बाग़ में ही अंतर्धान हो गया। स्त्री काँपती हुई धीरे-धीरे पाँव रख, इसी चाबी से दक्खिन-दरवाज़ा खोल भीतर पहुँच गई। ललिता नींद में ख़ुर्राटे भर रही थी। स्त्री ने उसे चुपचाप जगाया, और पोटली उसके सामने रख दी। ललिता इसका अभिप्राय कुछ समझ न सकी। ये कपड़े कैसे? कुछ और आपत्ति तो नहीं आ पड़ी। पर जब स्त्री को प्रसन्न-मुख देखा, तो कुछ धैर्य बँधा। स्त्री ने धीरे-धीरे सारी बातें ललिता को समझा दीं, और बोली—"बाग़ के माली को मैंने मिला लिया है। उससे दक्खिन-दरवाज़े की चाबी भी ले ली है, और ये वस्त्र भी उसी ने दिए हैं। इन्हें पहनकर, मर्दाना भेष बना रात के ग्यारह बजे मैं तुम्हें दक्खिन-दरवाज़े से निकाल दूँगी। बाहर इक्का खड़ा मिलेगा। उसी पर बिठाकर तुम बाग़बान के घर पहुँच जाओगी। मर्दाने भेष में इक्केवाले को संदेह न होगा, और बाद में जब तुम्हारे ग़ायब होने की बात खुले, तो मालिक को किसी से यह पता न चल सके कि कोई स्त्री या लड़की यहाँ से इक्के में गई है।"

ललिता ने, गाँव की होने पर भी, इन बातों का मर्म समझ लिया, और मन में सोचा कि इन निम्न श्रेणी के अनपढ़ लोगों में भी ऊँच-नीच समझने का कितना ज्ञान होता है।

ललिता ने पोटली से कपड़े निकाल पहनना आरंभ किया। और, दूसरे ही क्षण वह गाँव का एक सुंदर छोकरा मालूम होने लगी।

नौकरानी उसका हाथ पकड़ पास की शृंगार-मेज़ के सामने खींच ले गई, और उसके दर्पण में उससे अपना प्रतिबिंब देखने को कहा।

ललिता स्वयं इस रूपांतर से चकरा गई। अपने आपको ललिता के बजाय एक सुंदर लड़का बना पाया। प्रेम से विह्वल हो वह स्त्री से लिपट गई। दोनो अश्रु-धारा बहाने लगीं। कुछ क्षण बाद स्त्री ने अपने को छुड़ाकर कहा—"वाह रे छोकरे, बिना जाने यों ही किसी स्त्री से लिपटा पड़ता है!"

ललिता हँसकर अलग हट गई। स्त्री ने कहा—"लो, अब ग्यारह बजने का वक्त होता आ रहा है, मैं जाकर देखती हूँ कि सब मामला ठीक-ठाक है या नहीं।"

नौकरानी दबे पाँव बाहर आई, और चारों तरफ़ घूमकर देखा कि आज़ो तीनो दरवाज़ों पर बाहर से मज़बूत ताले पड़े हैं, और द्वारपाले सुख की नींद सो रहे हैं। एक ने मच्छर काटने से करवट बदली, तो सेविका का हृदय धड़कने लगा। जब वह पुनः खुर्राटे लेने लगा, तब जान में जान आई। लौटकर फिर भीतर आई, और ललिता से पूछा—"तुम्हें कुछ लिखना आता है?"

ललिता कुछ लज्जित-सी होकर बोली—"हाँ, यों ही कुछ टूटा-फूटा लिख लेती हूँ।"

स्त्री ने काग़ज़ और क़लम-दवात लाकर उसके सामने रख दी, और एक पत्र ललिता से लिखवाया—

"इस तरह अपना सतीत्व नष्ट कराने और पाप का जीवन बिताने के बदले में मर जाना ही अच्छा समझती हूँ। इसलिये मैं अब इस संसार को छोड़ अपना शरीर त्यागती हूँ। मैंने कैसे और कहाँ आत्म-हत्या की, इसकी कोई खोज न कर सकेगा। यह रहस्य मेरे मरने के बाद भी न खुल सकेगा। जिन लोगों ने मुझे अपनी मृत्यु बुलाने पर बाध्य किया, भगवान् उनका भला करें।"

पत्र को तकिए के नीचे रखकर उस स्त्री ने ललिता से चुपचाप पीछे-पीछे आने को कहा।

हे भगवान् ! जिसकी तू रक्षा करना चाहता है, उसकी रक्षा के निमित्त सभी परिस्थितियाँ भी वैसी ही अनुकूल पैदा कर देता है। जब देवकी के गृह तूने जन्म लिया, तो वसुदेव की बेड़ी अपने आप कट गई, पहरेदार भी गहरी नींद में सो गया, वसुदेव तुझे लेकर नंद के घर पहुँचा भी आए, और वहाँ से कन्या को लाकर देवकी के पास सुला दिया। क्या हो रहा है, किसी को पता तक नहीं चला। और फिर कन्या रोने लगी, पहरेदार जाग पड़े, तथा वसुदेव वैसे-के-वैसे ही बेड़ी में बँधे पाए गए।

इसी प्रकार ललिता को चुपचाप निकालकर नौकरानी ने बाग़बान के सिपुर्द कर दिया।

बाग़बान उसे इक्के में बिठाकर नौ-दो ग्यारह हो गया। इक्के-वाले को यही मालूम हुआ कि वह अपने बीमार लड़के को, जो इतनी दूर पैदल चलने में असमर्थ था, इक्के में बिठा अपने घर ले आया है। बाग़बान भी बड़ा चतुर था। इक्केवाले से किसी सूत्र का पता न चल जाय, इसलिये झूठे ही एक टूटे-से घर के सामने इक्का खड़ा किया, और किराए के दाम चुका वहीं से इक्केवाले को लौटा दिया। फिर उस लड़के के साथ दूसरी राह से, क़रीब एक कोस पैदल चलकर, अपने घर पहुँचा। घर शहर के बाहर था, और उसके साथ एक छोटा-सा खेत भी घर में सिवा पत्नी के और कोई न था। वहाँ जाकर उसने ललिता को एक चारपाई पर बिठाया, और अपने असली वस्त्र पहनने को कहा। फिर मर्दाने वस्त्रों को सँभालकर एक पोटली में बाँध लिया, और घर के भीतर रख आया। इन सब बातों से निपटकर, एक लँबी साँस लेकर बोला—"बेटी, अब तुम यहाँ आराम करो। भगवान् ने चाहा, तो अब तुम्हारा कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकेगा। तुम्हारे घरवालों का

पता चल जाय, तो वहाँ चली जाना। अन्यथा मेरे कोई बेटी भी नहीं है, मैं तुम्हें बेटी बनाकर रक्खूँगा।"

ललिता ने आँसू-भरे नेत्रों से उसकी ओर देखा, और कहा—"भगवान् तुम्हें इस नेकी का पुरस्कार अवश्य देंगे।" फिर जैसे कोई पक्षी पिंजरे से निकल खुले मैदान में स्वतंत्रता का सुख लूटता है, वैसे ही वह बड़े सुख से उस चारपाई पर लेट निद्रादेवी की गोद में सो गई। उसे आज की रात्रि अपने गाँव के घर के समान प्रतीत हुई।

उधर 'जादूघर' में नौकरानी भी चुपचाप ताला लगा, अपनी कोठरी में जा सो गई। उसके हृदय में भी आनंद उमड़ रहा था। उसने सोचा, मैंने जब से जन्म लिया है, शायद आज ही की रात्रि ऐसी है, जब वास्तविक सुख और शांति से सोने को मिला है।

* * *

(१२)

धर्म–धार में धैर्य-सहित जो नर बहते हैं,
चिरजीवी हो वही जगत में नित रहते हैं।
—लोचनप्रसाद पांडेय

पौ फटते ही सेविका नर्स ने उठकर बाग़ की परिक्रमा की। माली पहले ही से उसकी राह देख रहा था। स्त्री ने चलते-चलते ही सावधानी से चाबी उसके पास गिरा दी, और माली ने क़ैंची से मेंहदी को काटते-काटते उसे धीरे से उठा अपनी धोती में रख ली। स्त्री आँखें मसलती हुई, जैसे अभी सोकर उठी हो, अपनी कोठरी से निकल, सदर दरवाज़े से होती हुई, पहरेदारों के सामने आ खड़ी हुई। पहरेदार चिलम-तंम्बाकू में मस्त थे। उसे आते देख बोले—"लो, वह आ गई! अब हम दिसा-फ़राग़त से निपट लें।" और दरवाज़ा खोल दिया।

स्त्री प्रतिदिन की भाँति भीतर गई, और दो ही मिनट बाद बाहर आकर चिल्लाना आरंभ कर दिया। सब पहरेदार इकट्ठे हो गए। उसने उनसे पूछा—"रात में क्या कोई यहाँ आया था ?"

पहरेदार उसका अभिप्राय न समझ सके। एक दूसरे की तरफ़ देखने लगे। फिर उनमें से एक ने सहास्य कहा—"कोई भी नहीं। कोई भूत आया हो तो, ख़बर नहीं।"

स्त्री कृत्रिम क्रोध में बोली—"तो फिर वह लड़की कहाँ गई ? अंदर तो है नहीं।"

पहरेदार फिर एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। स्त्री ने डपट-कर कहा—"बताते क्यों नहीं, क्या मालिक आए थे, और उसे लिवा ले गए ?"

पहरेदार ने सिर हिलाकर कहा—"हमारे सामने तो यहाँ कोई नहीं आया। हम तो रात भर पहरा देते रहे।"

फिर इनमें से एक-एक ने जाकर पूरा घर देख डाला। तालों को भी हिला-झुला और खटका-खटकाकर देखा। सब ठीक लगे थे। स्त्री भी इनके पीछे-पीछे देख भाल करने में लग गई। जब कहीं पता न चला, तो बिगड़कर कहने लगी— "तो क्या उसे भूत उड़ा ले गए ? देखो, अच्छी तरह देखो, नहीं मालिक जान ले लेंगे।"

सभी पहरेदार हर तरफ़ घूम-फिरकर, बाग़ का पत्ता-पत्ता देखकर वापस आ गए, कहीं पता न चला। इधर यह ढूँढ़ हो ही रही थी, तभी बाग़ के दरवाज़े पर एक मोटर आ धमकी, और सदा की भाँति राजा साहब, डॉक्टर साहब और ख़ाँ साहब उतरकर भीतर आए।

डॉक्टर साहब ने आते ही स्त्री से पूछा—"क्यों, मरीज़ की हालत तो अच्छी है ?"

जब कोई उत्तर न मिला, और स्त्री की भावभंगी विकृत और घबराई हुई-सी दिखाई दी, तब इनको भी चिंता हुई। पूछा—"क्यों, रात को क्या फिर तबियत बिगड़ी ? तुमने उसी समय सूचना क्यों नहीं दी ?" पलँग पर ललिता को न देख पूछा— "क्यों, क्या लड़की हाजत रफ़ा करने गई है, या उसे दस्त आने लगे हैं ?"

उसी समय चारों पहरेदार और माली दरवाज़े पर आए, और नौकरानी को संबोधन कर बोले—"उसका तो कहीं पता नहीं चलता।"

तीनों ने इनकी ओर देखा और राजा साहब ने विचलित हो पूछा—"किसका पता नहीं चलता ?"

स्त्री ने रोते हुए, आँचल से आँखें पोंछते हुए कहा— "महाराज, आज सुबह ही जब मैं आई, तो लड़की को पलँग पर नहीं देखा। भीतर सब जगह देख चुकी, तो मैंने इन पहरेदारों से पूछा—मैं समझी, मालिक रात को आकर उसे कहीं साथ लिवा ले गए हों पर जब पहरेदारों ने कहा कि वे बराबर पहरा देते रहे हैं, और सब ताले वैसे-के-वैसे लगे हैं, मालिक भी रात को नहीं आए, तब मैं बहुत घबराई, और इन सबको ढूँढ़ने को भेजा।" कहते-कहते वह बिलख-बिलखकर रोने लगी, हिचकियाँ बँध गईं।

सभी भौचक्के-से रह गए। सब दरवाज़ों के तालों को ख़ुद जाकर देखा, सभी पूर्ववत् बंद पाए। अंदर कमरों में सारी जगह छान डाली, कहीं पता न पाया, बाग़ में एक-एक पेड़ और पत्ते को ढूँढ़ा, वहाँ भी पता न चला। तो निराश हो कमरे में लौट आए। स्त्री से, पहरेदारों और बाग़बान से खोद खोदकर पूछा गया, घंटे भर तक जिरह की, पर किसी के मुँह से कोई भी ऐसी बात न निकली, जिससे कोई सूत्र मिल सकता। ख़ाँ साहब का चेहरा पीला पड़ गया। राजा साहब क्रोध से लाल हो गए, और डॉक्टर साहब ठगे-से खड़े रह गए।

राजा साहब ने डॉक्टर साहब और ख़ाँ साहब की तरफ़ देखकर कहा—"क्यों जी, तो फिर लड़की को क्या आसमान उड़ा ले गया या ज़मीन निगल गई ?"

तीनो में हरएक अपनी-अपनी चिंता में मग्न था। ख़ाँ साहब सोच रहे थे—हाय ! बना-बनाया घर मिट्टी में मिल गया ! डॉक्टर साहब सोचते थे, जो पुरस्कार इनसे मिलनेवाला था वह, सब हवा हो गया। और राजा साहब सोच, रहे थे, जाल में फँसी चिड़िया हाथ से उड़ गई। उन्हें यह भी डर था कि यदि वह किसी तरह निकल भागी हो, और पुलिस से अपना हाल कह दे, तथा भेद खुल जाय, तो बड़ी मिट्टी पलीद होगी, और फिर न-जाने कौन-सी विपत्ति सम्मुख आए। मन-ही-मन कुढ़ने के अतिरिक्त इसकी सूचना पुलिस को दे ही नहीं सकते थे। ऐसी बातों में पुलिस के नाम से वह कोसों दूर भागते थे। इसमें तो उल्टे ही जान फंदे में फँस जाने का भय था।

तीनो निर्जीव-से बड़े कमरे में आकर सोफ़ों पर बैठ गए। नौकरानी रोती-बिलखती इधर-उधर चक्कर काट रही थी, और चिल्ला-चिल्लाकर कह रही थी—"हाय ! मेरी सारी मेहनत अकारथ गई !"

डॉक्टर साहब ने उसे बुलाकर ढाढ़स दिया—"घबराओ नहीं, तुम्हारी मेहनत का पूरा मूल्य मैं राजा साहब से चुका दूँगा। तुम्हें तो मैं लाया था। तुमने जितनी हो सकती थी, उसकी सेवा-शुश्रूषा की। अगर राजा साहब कुछ न देंगे, तो मैं अपने पास से दूँगा। मेरा तो लेना-देना ऐसे भी गया, और वैसे भी।"

स्त्री ने हाथ जोड़कर कहा—"हाँ, महाराज, हम ग़रीब आदमी हैं। हमारी तो रोटी इसी से चलती है। आप बड़े लोग हैं, आपको थोड़े-से रुपयों की क्या परवा है !"

बातचीत करते-करते अचानक ही डॉक्टर साहब की दृष्टि पलँग के

तकिए पर पड़ी। उसके नीचे एक काग़ज़-सा दिखाई दिया। लपककर तकिए के नीचे से काग़ज़ निकाला, और पढ़कर स्तंभित रह गए। और फिर राजा साहब को दिखाया। वह भी उसे पढ़कर चौकन्ने-से रह गए। ख़ाँ साहब ने पढ़ा, तो सिर पर हाथ पटक खड़े-के-खड़े रह गए।

डॉक्टर साहब के हृदय पर इस घटना ने बड़ा प्रभाव डाला। उनकी आँखों से आँसू निकल पड़े, और सहसा कह उठे—"ओफ़ री लड़की! धन्य है! अब भी भारत में ऐसी नारियाँ हैं, जो अपने सतीत्व की रक्षा के लिए अपने जीवन का भी कोई मूल्य नहीं समझतीं। धन्य हो तुम भारत की अबला! आज मैं अपने विगत जीवन को धिक्कारता हूँ। क्या मैंने डॉक्टरी इसीलिये पढ़ी है कि पापियों को उनके पाप-कर्मों में सहायता दूँ? नहीं, मेरा कर्तव्य मानव-मात्र के दुख-दर्द में काम आकर उन्हें सहायता पहुँचाना है। मैं अपने पिछले पापों का प्रायश्चित्त अब इसी प्रकार कर सकता हूँ कि आज से शपथ लूँ कि किसी कुकर्म में भाग न लूँगा। जो कुछ भी पूँजी मेरे पास है, उससे मुफ़्ती दवाख़ाना आरंभ करूँगा, और अपनी तथा अपनी गृहस्थी की जीविका चलाने के बाद जो कुछ बचेगा, उसे निर्धनों और असहायों की चिकित्सा में ख़र्च कर दूँगा। आज से निर्धनों की चिकित्सा उनके घर जाकर बिना किसी फ़ीस के करूँगा। अपने घर पर ज़च्चाख़ाना खोलूँगा। उस निरपराध अबला के साथ मैंने जो अत्याचार किया है, उसके प्रायश्चित्त में मैं आज से नारी-मात्र को देवी तुल्य मान उनकी पूजा किया करूँगा।"

पत्र पढ़कर राजा साहब को अपनी करतूतों का भंडा-फोड़ हो जाने का डर जाता रहा। अतः उन्होंने भी चुपचाप रहना ही निश्चय किया। उनके हृदय पर भी इस घटना ने प्रभाव डाला। वह सोचने लगे—"ओह! ऐसी चरित्रवती, सती स्त्रियाँ भी हैं, जो अपनी जान भी इस तरह दे डालने में ज़रा नहीं हिचकतीं।"

ख़ाँ साहब ने अपना माथा ठोका कि अब रोटी मिलने का सहारा भी न रहा। अब तो टुकड़े-टुकड़े को मुहताज होकर फिरना पड़ेगा।

डॉक्टर साहब ने जेब से पचास रुपए के नोट निकाल नौकरानी के हवाले किए, और कहा—"लो, यह अपना वेतन। अब तुम्हारी नौकरी की आवश्यकता नहीं।" उन्होंने सोचा, इससे नौकरानी प्रसन्न हो जायगी, और उसकी ज़बान बंद रहेगी।

सभी के दिलों पर पश्चात्ताप, निराशा और भय ने अधिकार जमा लिया था। निर्जीव-से वे सब अपने-अपने घर लौट गए।

* * *

(१३)

ग़फ़लत में गई आह! मेरी सारी जवानी;
ऐ उम्र गुज़िश्ता, मैंने तेरी क़द्र न जानी।

—मीर

सबके चले जाने के पश्चात् नौकरानी ने भी अपना अस्तर-बस्तर अपनी कोठरी से निकाल वहाँ से बिदा होने की तैयारी की। कोई गाड़ी-भर सामान तो था नहीं—एक गठरी में अपने लत्ते-कपड़े और कुछ बरतन बाँध, कोठी के सामान को पहरेवालों को सँभलवा, गठरी सिर पर रख बाहर निकली, और एक बार मुड़कर अंतिम बार उस 'जादूघर' को प्रणाम किया। मन-ही-मन अपने इस नए जीवन के लिए परमात्मा को धन्यवाद दिया। अपनी प्रेरणा-देवी के दर्शन के लिये वह लालयित हो उठी। वह अपने घर, जो एक मैली-कुचैली कोठरी थी, और जो एक अपकीर्तिवाले मुहल्ले में था, आई, और पोटली

रख, कुछ देर के लिये अपनी चारपाई पर विचार-मग्न बैठी रही। उसे स्वयं अपनी दशा और अपने पिछले धंधे पर बारंबार घृणा हो आती थी। अपने उस निवास-स्थान पर उसने एक घृणा की दृष्टि फेंकी। अब वह घर उसे ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो किसी नरक में आकर फँस गई हो। वहाँ कुछ ही क्षण ठहरने पर भी उसका दम घुटने-सा लगा। उसे जब ललिता का ध्यान आया, तो सोचा, हाय! अगर मैं भी उसी की भाँति इच्छाओं पर नियंत्रण रख सकी होती, और अपनी वासनाओं को अपने मनो बल द्वारा दबा सकी होती, तो आज मेरी यह दशा क्यों होती? यौवन के आवेश में मैंने कभी अच्छाई और बुराई में भेद न माना। सतीत्व को, जो एक भारतीय महिला का भूषण है, पानी की तरह बहाकर नष्ट कर दिया। लज्जा को, जो स्त्री-मात्र का अवलंबन है, ताक़ पर उठा कर रख दिया। उस समय की वे कुचेष्टाएँ, जो मुझे हवा में उड़ाए फिरती थीं, और जिनमें मैं जीवन का सर्वस्व सुख मानती थी, कितने दिन तक मुझे सुखी रख सकीं? 'चार दिना की चाँदनी फिर अँधियारी रात।' अब मेरे वे प्रेमी, जो मुझे जन्म-भर सुख से रखने की प्रतिज्ञा करते थे, और बात-बात पर मेरे लिये जान देने को तत्पर रहते थे, कहाँ गए? दो-दो, चार-चार दिन के बाद सबों ने मुझे ठोकरें मारकर बाहर किया। तब भी मेरी आँखें न खुलीं! लोक-लाज, मान-मर्यादा, सब खोकर भी मुझे ज्ञान प्राप्त न हुआ और इस ढलती, उम्र में भी मैं कुकर्म से धन पैदा करके पेट पालना ही उचित समझती रही। अपना पेट तो कुत्ता भी किसी तरह भर लेता है। केवल अपना पेट भरने के लिये मुझे इन पापियों की शरण लेनी पड़ी। धिक्कार है मुझे और मेरे इस कलुषित जीवन पर! यदि दैव-योग से मुझे उस देवी बालिका की सेवा का अवसर प्राप्त न होता, तो मेरा संपूर्ण जीवन उसी नरक में बीतता। मुझे उसी अपनी देवी के चरण पकड़, उसकी सेवा में अपना शेष जीवन बिताना चाहिए। उसी की कृपा से परमात्मा मेरे पाप क्षमा करेंगे।

इसी प्रकार एक दृढ़ निश्चय कर वह स्त्री वहाँ से उठी। घर की दहलीज़ को उसने पाँवों से ठुकराया, तथा गृहस्थी की सारी चीज़ों पर घृणा से थूक दिया। बाज़ार में आ, उस पचास रुपए में से एक बढ़िया देशी रेशमी धोती ख़रीदी, एक रुपए की मिठाई ली, और संध्या होते-होते बाग़बान के घर पहुँची।

बाग़बान भी घर आ गया था, और जहाँ ललिता चारपाई पर बैठी ऊपर की तरफ़ ध्यान किए कुछ सोच रही थी, वहीं आकर ज़मीन पर बैठ गया। ललिता हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई, और कहने लगी—"पिताजी, यह क्या? तुम नीचे बैठो, और मैं चारपाई पर बैठी रहूँ!"

बाग़बान ने हँसकर कहा—"मैंने तुम्हें बेटी अवश्य बनाया है, पर मालकिन जब छोटी उम्र की होती हैं, तब उन्हें भी तो 'बेटी' ही कहते हैं।"

ललिता बाग़वान की बात सुनकर शर्म से लाल हो बोली—"नहीं पिताजी, मैं तो तुम्हारे ही समान गाँव के एक दरिद्र घर की लड़की हूँ। तुम ऐसा कहकर मुझे लज्जित न करो।"

"ललिता, तुझे स्वयं ही नहीं मालूम कि तू कौन है! ग़रीब किसान की पुत्री है या सोने के पालने में झूलने योग्य राजकुमारी-सी लाड़िली ललिता!"

बाग़बान और ललिता में बातें हो ही रही थीं, उसी समय नौकरानी एक हाथ में काग़ज़ में लिपटा वस्त्र और दूसरे में मिठाई की टोकरी लेकर आ पहुँची। ललिता उसे देखते ही उससे जा चिपटी। उसने भी उसके माथे का चुंबन किया, और दोनो चीज़ें सामने रखकर बोली—"लो देवी, तुम्हारे लिये भेंट लाई हूँ, स्वीकार करो, और इस दासी को अपने चरणों में स्थान दो।"

ललिता भौचक्की-सी हो उसके मुख की ओर एकटक देखने लगी। नौकरानी ने बाग़बान के सामने ही अपने विगत जीवन की पूरी कथा

सुनाई, और अंत में बोली—"दासीपन तो मैं तुम्हारा बहुत दिनों से कर रही हूँ, किंतु तब पैसे के लोभ से करती थी, और अब अपने जीवन-सुधार के निमित्त करूँगी। स्वार्थ मेरा तब भी था, और अब भी है।"

इस तरह बाग़वान और नौकरानी, दोनो अपनी मानसिक 'देवी' को चारपाई के सिंहासन पर आरूढ़ कर, सच्चे प्रेम और भक्ति को हृदय में धारण कर, नीचे बैठ अपनी इष्टदेवी के ध्यान में मग्न हो गए।

नौकरानी भी अब बाग़वान की झोपड़ी के पास ही रहने लगी है। इधर-उधर मज़दूरी करती, और तन-मन से अपनी इष्टदेवी की सेवा। ललिता ने घर के काम-काज में हाथ बँटा, बाग़बान की स्त्री के हृदय को जीत बिना दाम की सेविका बना लिया था। इसी प्रकार ललिता वहाँ राजरानी की तरह रहकर अपने पिछले कष्ट बिलकुल ही भूल गई, और आनंद से दिन बिताने लगी।

संसार-चक्र ऐसा है कि सुख में आदमी अपनों को भी भूल जाता है। ललिता को भी यदि अपने कक्का और भाई की याद न आई, तो आश्चर्य ही क्या?

किंतु एक दिन उसे उनकी बहुत याद आई। विगत जीवन, गाँव के वे मनोहर दृश्य, वहाँ के लोग और विशेषकर रज्जो की याद से दिल भर आया। प्रतिदिन की भाँति संध्या समय जब बाग़बान और नौकरानी उसके समीप आए, तो देखा, उसका मुख लाल हो रहा है, नेत्रों में आँसू भरे हुए हैं। उन्होंने मन-ही-मन सोचा, आज भगवती इस तरह कोप में क्यों बैठी हैं? कारण कुछ समझ में न आया। उनकी बाग़बान ने समझा, संभवतः उसकी घरवाली से ही कुछ कहा-सुनी हो गई होगी। बोला—"बिटिया! बता, किसने क्या कहा है? मैं उसकी ज़बान खींच लूँगा। अगर किसी ने तुझे बुरी आँखों देखा हो, तो उसकी आँखें निकाल लूँगा।"

ललिता ने नीची गरदन कर समझाया कि ऐसी कोई बात नहीं। फिर धीरे-धीरे अपने पिता और भाई की याद आने का हाल कहा, और रो पड़ी। उन्होंने बहुत समझा-बुझाकर शांत किया, और कहा—"हम बहुत जल्द उनका पता लगाएँगे।"

---

(१४)

लोकन के अपवाद को डर करिए दिन-रैन ;
रघुपति सीता परिहरी सुनत रजक के बैन।

—वृंद

दूसरे ही दिन बाग़बान एक रोज़ की छुट्टी ले तरनतारन-गाँव पहुँचा, और वहाँ चुपचाप नवलसिंह मेहते और उसके बेटे देवीसिंह का पता लगाने लगा। थोड़ी ही देर में ललिता के ग़ायब होने और उन दोनो के गाँव छोड़ने का सारा क़िस्सा उसे मालूम हो गया। उसके मुँह से यह बात निकलते-निकलते रह गई कि ललिता मिल गई, और अच्छी तरह है, क्योंकि ललिता की आज्ञा बिना इस भेद को उसके भाई और पिता की अनुपस्थिति में कहना चाहिए या नहीं, यह निर्णय न कर सका।

पूछ-ताछ होने पर राजेश्वरी या अपनी पूर्व-परिचित रज्जो को भी पता लगा कि एक बूढ़ा कहीं से आ मेहते की खोज कर रहा है। वह भी दौड़ी हुई उसके पास आई, और बोली—"तुम कहाँ से आए हो? तुम मेहतेजी के कौन हो? तुम्हें उनकी कोई ख़बर मिली क्या?"

एकदम इतने प्रश्नों से बेचारा बूढ़ा बाग़बान चकरा गया, और इसी

सोच में था कि इन बातों का उत्तर दूँ या नहीं। इतने ही में रज्जो की आँखों में आँसू भर आए, और वह एकदम बोली—"कहीं मेरी लल्लो का भी पता मिला ?"

बाग़बान समझ गया, यह ललिता के ही बारे में पूछती है। उसने पुचकारकर कहा—"बेटी, हम सब पता लगा लेंगे, और जल्दी लल्लो को तुमसे मिला देंगे।"

बाग़बान ने अब और ठहरना ठीक नहीं समझा। जल्दी-जल्दी पाँव उठा अपने घर की ओर रवाना हुआ।

घर आ बाग़बान ने सारा हाल विस्तार-पूर्वक ललिता से कहा। पहले तो ललिता ने चाहा, इनसे कहूँ, मुझे गाँव पहुँचा दो, जिससे अपनी रज्जो से तो मिल लूँ। पर फिर यह सोचकर कि पिता और भाई का पता तो मिला ही नहीं, उन के गाँव में न होते हुए जाना ठीक न होगा, और जब लोग पूछेंगे कि तू कैसे गई, और कैसे आई, तब क्या उत्तर दूँगी ? बात छिपाऊँगी, तो ठीक नहीं, और कहूँगी, तो न-जाने क्या--क्या बीते। फिर यह भी ध्यान आया कि मेरी अवस्था की लड़की के ग़ायब हो जाने से कुछ लोग चरित्र पर भी टीका-टिप्पणी न कर बैठें, इसलिये यही निश्चय किया कि जब तक बाप और भाई का पता न चल जाय, और उनसे सलाह करके सारी बातें न हो लें, तब तक चुपचाप बैठे रहना ही ठीक है।

---

(१५)

साईं अवसर के पड़े को न सहै दुख-द्वंद ?
जाय बिकाने डोम-घर वे राजा हरिचंद।
वे राजा हरिचंद करें मरघट - रखवारी ;

धरे तपस्वी वेश फिरे अर्जुन बलधारी ।
कह गिरिधर कविराय, तपै वह भीम रसोई ;
को न करै घटि काम परे अवसर के साईं ।

—गिरिधर

जब से नवलसिंह मेहते और उनके पुत्र देवीसिंह ने तरनतारन-गाँव छोड़ा है, तब से उनका कुछ हाल ही नहीं मालूम हुआ, इसलिये अब हम उनका ज़िक्र करते हैं।

गाँव छोड़कर ये बेचारे बहुत बुरी दशा में लखनऊ आए। इनका भी यही ख़याल था कि गाँव के ज़मींदार नवाब साहब ने उस रोज़ के ख़ाकी वर्दीवाले ख़ाँ साहब की मार्फ़त ललिता को उड़वाया होगा। और, जैसे सच्ची बात की प्रेरणा परमेश्वर ने हृदय में पैदा कर दी हो, इनका दिल यही कहता था कि ललिता के खो जाने की रपट पुलिस में लिखा दें। फिर ध्यान आया कि ग़रीब की वहाँ कौन सुनेगा। जहाँ रुपए-पैसे से भी काम चलना कठिन है, वहाँ हम-सरीखे दीन-भिखारी को कौन किस खेत की मूली समझेगा। नाहक़ अपना फ़ज़ीता और करा लेंगे। बस, यही सोचकर भगवान् की कृपा और अपने भाग्य के भरोसे ये लखनऊ आकर ललिता को ख़ुद ढूँढने का प्रयत्न करने लगे। किसी रईस की कोठी बन रही थी, वहाँ देवीसिंह पत्थर ढोने के काम पर लग गए। नवलसिंह रूखे-सूखे दो टिकड़े सेंक लेते और जब वक्त मिलता, शहर में घूमने निकल जाते थे।

जैसे कोई अंधा कोई चीज़ ढूँढने के लिये चारों तरफ़ टटोलता है, वैसे ही ये बेचारे बिना किसी ठौर-ठिकाने के ललिता की तलाश में घूमा करते। ये बिलकुल मूर्ख नहीं थे। जानते थे, ललिता चलते-फिरते बाज़ार में नहीं मिल जायगी। पर क्या करते, दिल कमबख़्त बड़ी बुरी चीज़ है। आशा न होने पर भी आशा रखनी पड़ती है।

ये आते-जाते नवाब साहब के महल पर सदा इस बात की खोज में रहते थे कि उस वर्दीधारी ख़ाँ साहब को देख पाएँ, तो हाथ-पैर

जोड़कर ही उनसे पूछें। परंतु महीने-भर चक्कर लगाने पर भी इन्हें वह दिखाई नहीं दिए। इन्होंने बात-बात में नवाब साहब के महल के नौकरों से एक रोज़ ज़िक्र कर दिया। उनकी ज़बानी मालूम हुआ कि ख़ाँ साहब को तो मुद्दत हुई नवाब साहब ने नौकरी से निकाल दिया। दबी ज़बान से इन्होंने यह भी पूछकर मालूम कर लिया कि उनके यहाँ कोई लड़की नहीं लाई गई, बल्कि उनकी बातों से इन्हें यह विश्वास हो गया कि नवाब साहब बड़े अच्छे चाल-चलन के आदमी हैं, और उनके बारे में ऐसा ख़याल करना ग़लती है।

अब बुड्ढे मेहतेजी इसी फ़िराक़ में रहते थे कि ख़ाँ साहब कहीं दिखाई पड़ जायँ, तो कुछ बात बने। एक दिन यह थककर, शाम के वक़्त, शहर के बाहर, पेड़ के नीचे बैठ गए थे कि इतने में एक मोटर का भोंपू बजा। इन्होंने आँख उठाई, तो उसमें दो आदमी पीछे की तरफ़ और एक आगे हाँकनेवाले के बराबर बैठे दिखलाई दिए। आगेवाला मनुष्य वही वर्दीधारी ख़ाँ साहब-सा मालूम पड़ा, पर अब वह सादे कपड़े पहने था, इसलिये साफ़ पहचानने में नहीं आया। फिर भी बुड्ढे मेहतेजी को संदेह हुआ। इन्होंने उठकर लोगों से पूछा—"यह मोटर किसकी थी?"

लोग हँसते और जवाब देते—"अरे बुड्ढे! तेरी अक़्ल सठिया गई है, जो ऐसा सवाल करता है। सैकड़ों मोटरें हर वक़्त आती-जाती हैं। किसे मालूम, कौन-सी मोटर किसकी है।"

बुड्ढे ने चुपचाप यह सब सुना, और मन-ही-मन कहने लगा—"धन्य हो बड़े शहर! जैसे तुम, वैसे तुममें रहनेवाले। किसी को किसी से सहानुभूति नहीं—किसी को ग़रीब पर दया नहीं। कोई मरे, तो तुम्हें रंज नहीं, और जिए, तो तुम्हें परवा नहीं। हमारे गाँव में आपस में कैसा मेल और कैसा घरोपा होता है। एक के लिये दूसरा जान तक देने को तैयार रहता है।" यह सोचते अवश्य थे, पर फिर भी अपनी धुन में मस्त थे। जिससे देखो, वही

सवाल करते। गाली खाते जाते, दुतकार सुनते जाते, पर अपनी रट जारी रखते।

कोई-न-कोई ख़ुदा का बंदा ऐसा भी होता है, जो ग़रीबों पर तरस खाता है। सब एक-से हो जायँ, तो दुनिया ही पलट जाय। बस, इन्हें एक मियाँ साहब मिल गए। उन्होंने इन पर रहम खाया। सोचा—"ज़रूर कोई बेचारा सताया हुआ है। इसी से तो पागलों की तरह एक ही सवाल सब से करता फिरता है। मोटर को गए, कहता है, घंटाभर हुआ। तबसे बीसों मोटरें इधर से निकल गई होंगी। अब किसे क्या मालूम हो सकता है कि कौन-सी मोटर के लिये यह पूछता है? मगर यह ऐसा बेवक़ूफ़ भी मालूम नहीं होता कि यह बात इसकी समझ में न आई हो। इसमें कोई भेद ज़रूर है।"

वह बुड्ढे के पास आए, और बड़ी गंभीरता से, मेहरबानी की निगाह कर, पूछने लगे—"भाई, किस मोटर के बारे में पूछते हो? अपना मतलब तो बतलाओ।"

बुड्ढे ने और बात तो नहीं कही, पर इतना कहा—"उस मोटर में आगे, चलानेवाले के पास, एक ख़ाँ साहब साफ़ा बाँधे बैठे थे। उन्हें मैं पहचानता हूँ। उनके घर का पता नहीं मालूम, पर उनसे मिलने की बड़ी ज़रूरत है"

इस पर मियाँ साहब ने कहा—"तुम यहीं चौराहे पर बैठो मैं भी तुम्हारे पास बैठता हूँ। अगर ख़ुदा की क़ुदरत से वही मोटर लौटकर आवे, तो तुम मुझे बतलाना। मैं उसे पहचानने की कोशिश करूँगा।"

मेहतेजी ने इन्हें नेकी का फ़रिश्ता समझा। मन-ही-मन कहने लगे—"देखो, लोग कहते हैं, मुसलमान हिंदुओं से नफ़रत करते हैं, और वे उनके जानी दुश्मन होते हैं। यह भी तो बेचारे मुसलमान हैं। कैसे मुझ-सरीखे ग़रीब से दया से बात कर रहे हैं। दुनिया में हर

मज़हब में सब तरह के लोग होते हैं। किसी में भी सभी बुरे और सभी भले नहीं हो सकते।"

परमेश्वर सचमुच अब इनकी सहायता करने पर उतारू नज़र आता है। ज़रा देर में वही मोटर लौटती दिखलाई दी। बुड्ढे मेहते तो दूर से ही आँख गड़ाए देख रहे थे। झट से मियाँ साहब को दिखलाकर बोले—"यही मोटर है, और देखो, वह आगे ख़ाँ साहब बैठे हैं।"

मियाँ साहब ख़ाँ साहब के बारे में तो कुछ नहीं कह सके, मगर मोटर ज़रूर पहचान ली, और बोले—"मोटर तो राजा उत्तमसिंह की मालूम होती है।"

फिर धीरे से कान में कहने लगे—"यह इस शहर के बड़े रईस हैं। लोग इन्हें बड़ा भलामानस और पब्लिक की ख़िदमत करनेवाला समझते हैं। मगर मुझे मालूम है, यह अव्वल नंबर का कमीना शख़्स है, या यों कहिए, आदमी के चोले में शैतान है। लेकिन हम-सरीखे लोग मुँह से उफ़ नहीं कर सकते। गवर्नमेंट भी इससे ख़ुश है, हाकिम लोग सब इसके ज़र-ख़रीद ग़ुलाम-से हैं। यह मत समझना, मैं मुसलमान हूँ, इसलिये इस हिंदू ताल्लुक़दार की बुराई करता हूँ। नहीं, मेरे कई हिंदू दोस्त भाई से ज़्यादा हैं, और कई मुसलमान रईसों को मैं इससे ज़्यादा रज़ील और ज़लील समझता हूँ। ख़ैर, अब तुम यह तो बतलाओ, अपने मिलनेवाले ख़ाँ साहब से कैसे मिल सकोगे? तुम तो कहते हो, मुझे उनका नाम भी याद नहीं। अव्वल तो इन राजा साहब के पास तुम-सरीखे आदमी की पहुँच ही होना मुश्किल है, और पहुँच भी गए, तो इनका पता कैसे चल सकेगा?"

बुड्ढे मेहतेजी ने जवाब दिया—"जिस परमेश्वर ने यह पता लगवा दिया है, वही आगे भी रास्ता बतावेगा। आप इतनी कृपा और करें कि इन राजा साहब के मकान का पता बतला दें, जिससे मैं वहाँ

तक तो पहुँच सकूँ। आपने जो दया मुझ ग़रीब पर की, उसके लिये मैं आप का कृतज्ञ हूँ। भगवान् आपका भला करें।"

यह सुन मियाँ साहब ने राजा साहब के महल का पता बतला दिया, और हाथ की (माला) तसबीह हिलाते और यह कहते हुए कि "ख़ुदावंद करीम तुम्हारी मदद करें," चल दिए।

मेहते आज की इस घटना से ऐसे ख़ुश हुए, मानो ललिता का पता ही लगा लिया हो। देवीसिंह मजूरी से लौटे, और इन्हें न देख घबरा गए! सोचा, ललिता की तरह कहीं बाप से भी तो हाथ नहीं धो बैठना पड़ेगा। फिर सोचा, उन्हें पकड़ ले जाकर कोई क्या करेगा। इतने में मेहतेजी आ गए और देवीसिंह से सारी कथा कह सुनाई।

देवीसिंह को ताव आ गया। बोले—"कक्का! कहो, तो अभी ससुरे का सिर फोड़कर लल्लो को निकलवा लाऊँ। इसी बदमाश ने उसे उड़ाया है।"

मेहतेजी ने कहा—"बेटा, धीरज धरो। जल्दी करने का काम नहीं। और, यह भी समझ लो कि हाथा-पाई और मार-पीट से काम बिगड़ जायगा। भूलकर भी ऐसा मत सोचना। मैंने तुम्हें गाँव में भी यही शिक्षा दी थी कि कभी किसी से ऐसा नहीं करना। जो अपने को मारे, उसके हाथ जोड़ देना। अब तुम तो अपनी मजूरी करो, और मैं जाकर उस राजा की नौकरी करता हूँ। अगर उसने नौकर रख लिया, तो सब काम बन जायगा। ऐसे काम धीरज से होते हैं।"

फिर उन्होंने खोज के बारे में अपनी तरकीब देवीसिंह को बता दी। देवीसिंह के मन में वह अच्छी तरह जम गई। यह तय पाया कि अगर मेहते राजा साहब के नौकर हो गए, तब तो देवीसिंह वहाँ मजूरी के बाद जाकर रहा करेंगे, नहीं तो फिर की फिर देखी-सुनी जायगी।

(१६)

रिज़ोल्यूशन की शोरिश है, मगर उसका असर शायद ;
पलेटों की सदा सुनता हूं, और खाना नहीं आता !

*　　　*　　　*

ये जुगनू भी नई ही रोशनी से मिलते-जुलते हैं ;
अँधेरा ही रहा जंगल में, गो ये जा-ब-जा चमके !

—अकबर

दूसरे रोज़ सुबह ही नवलसिंह राजा उत्तमसिंह की ड्योढ़ी पर हाज़िर हुए, और बड़ी दीनता से वहाँ के नौकर-चाकर तथा पहरेवालों से बातचीत करने लगे। उन्हें चिलम भर-भरकर पिलाने लगे। कोई दो-तीन घंटे तक उनकी इस तरह सेवा करने पर इन्होंने इतना तो कर लिया कि वहाँ के लोगों ने इन्हें ड्योढ़ी पर बैठा रहने दिया, हटने को नहीं कहा। इन्होंने सोचा, अगर नौकरी की जुगत भी लगी, तो उन्हीं के ज़रिए से ठीक होगा, क्योंकि इतने बड़े आदमी के यहाँ वैसे पूछता ही कौन है। और, नौकरी न भी लगी, तो यहाँ बैठने का सहारा तो मिल गया। इसी से-भगवान् ने चाहा, तो— मतलब निकल सकेगा। खाँ साहब अगर यहाँ के आने-जानेवालों में होंगे, तो कम-से-कम उनसे तो भेंट हो ही जायगी।

इस तरह वहाँ के नौकरों को गाँठ दोपहर के बाद इन्होंने एक ख़िदमतगार से कहा—"भैया, कोई नौकरी की मेरी भी तजवीज़ हो जाय, तो ठीक हो। मैं तो आजकल भूखों मर रहा हूँ।"

उसने कहा—"यहीं बैठा रह। साँझ को मालिक हवा खाने बाहर निकलेंगे, तब अरज कर लेना।"

इन्होंने जवाब दिया—"भैया, आजकल सैकड़ों नौकरी के लिये मारे-मारे फिरते हैं। इस तरह मेरी अरज पर कौन सुनवाई करेगा। तुम कुछ सहारा लगाओ, तो काम चल जाय।"

ख़िदमतगार ने इस पर ज़रा पिघलकर कहा—"अच्छा, ठहरो; चार बजे सरकार को जब चाय पिलाने जाऊँगा, तब अगर मौक़ा मिला, तो कहूँगा।"

बस, नवलसिंह अब इस आशा के भरोसे डटे रहे। एक कपड़े से रोटी का एक टुकड़ा निकाल नमक के साथ, एक कोने में बैठ, खाने लगे, और फिर बाहर जा, नल की टोटी खोल हाथ की अंजलि से पानी पी आए। बस, इस तरह रात तक की तैयारी हो गई।

दिन के क़रीब तीन बजे होंगे कि राजा साहब के महल पर गाड़ियों और ताँगों का आना शुरू हो गया। उनमें से किसी से जवान लड़के और किसी से जवान लड़कियाँ उतर-उतरकर, सीढ़ियों से चढ़ ऊपर जाने लगीं। इस तरह टोल-के-टोल लड़के-लड़कियाँ वहाँ इकट्ठी हो गईं। इन लड़के-लड़कियों में किसी-किसी की बड़ी उम्र थी। लड़के सब-के-सब मोटी खादी की धोतियाँ और लंबे कुरते पहने थे। किसी के सिर पर खादी की सफ़ेद टोपी थी, और कोई नंगे सिर ही थे। लड़कियाँ भी सादे वस्त्र पहने थीं—कोई खादी की धोती, जिसके किनारों पर बेल छपी थी, कोई रेशमी धोती, पर मोटे, देशी रेशम की, पहने थी। नवलसिंह मेहते ने ऐसा तमाशा आज तक न देखा था, इसलिये बड़े शौक़ से सारे आनेवालों को देखते रहे। इनका दूसरा मतलब यह भी था कि इन लड़कियों में ही शायद कहीं ललिता निकल पड़े। इसलिये सबको बड़े ग़ौर से, टकटकी बाँधे, देखते रहे। आध घंटे तक इस तरह इन लोगों की धूम रही। नौकर लोग भी इधर-उधर

बड़ी तेज़ी से आ-जा रहे थे। इन्होंने एक ख़िदमतगार से पूछा—"भाई, आज यह क्या बात है, इतने मोड़ी-मोड़ा काहे को जुड़े हैं ?"

उसने मुस्किराकर उत्तर दिया—"आज देश-सेवक और देश-सेविकाओं की एक कमेटी है। हमारे राजा साहब उस कमेटी के प्रेसिडेंट हैं।"

नवलसिंह ने यह तो अपने गाँव में भी सुन रक्खा था कि आज-कल लोगों में अपने देश के बने कपड़े पहनने की धुन सवार है, पर इतने आदमी सब-के-सब खादी के कपड़े पहने इन्होंने एक जगह कभी नहीं देखे थे, और ख़ासकर लड़कियाँ। यह बेचारे यह न समझ सके कि कमेटी कैसी होती है, और प्रेसिडेंट क्या चीज़ है, और कौन होता है। इसलिये इन्होंने यों ही गरदन हिला दी। सोचा, इन लोगों को न्योता दिया होगा, कोई खाना-वाना होगा। अपने मालिक के यहाँ जब यह नौकर थे, तो बहुत वर्षों पहले अनाथालय का बैंड देखा था। और उसके लड़कों को भी एक-से कपड़ों की वर्दी पहने देखा था। सोचा, ऐसे ही ये भी कोई होंगे।

चार बजने का वक़्त हुआ। यह बेचारे इस आशा में थे कि अब चाय के वक़्त ख़िदमतगार इनकी नौकरी की बात छेड़ेगा। इतने ही में वह ख़िदमतगार नीचे आया, और बोला—"भाई, आज तो बड़ी भीड़-भाड़ है। तुम्हारे बारे में कहने का मौक़ा दिखलाई नहीं पड़ता। पर तुम ऊपर चलो, वहाँ उठा-धरी में, काम-काज में सहारा देना। अगर मालिक की नज़र पड़ गई, तो बात कहने का अच्छा मौक़ा मिल जायगा।"

यह तो चाहते ही थे कि किसी तरह महल के भीतर जाने और उसे देखने का अवसर मिल जाय। झट साथ हो लिए, और अंदर जा धमके। वहाँ इन्होंने कमेटी कैसी होती है, देख लिया। बड़ी देर तक, आपस में, ज़ोर-ज़ोर से बातें होती रहीं। कोई खड़ा होकर बोलता,

कोई उसका उत्तर खड़े होकर देता । राजा साहब के भी अब इन्हें अच्छी तरह दर्शन हो गए । वह बीच की कुर्सी पर बड़े ठाट-बाट से बैठे थे । एक आदमी काग़ज़ पर कुछ लिखता जाता था ।

ज़रा देर में राजा साहब ने आवाज़ दी—"अरे, कोई है । चाय लाओ ।"

कई नौकर बड़ी-बड़ी थालियों में सामग्री ले जाकर मेज़ पर सजाने लगे । रकाबियों में खाने की चीज़ें थीं, और चाय की रकाबी तथा प्याले ख़ाली चुन दिए गए । फिर कई चाँदी के चायदान लाए गए, और उनके साथ चाँदी के बरतनों में दूध और शकर । राजा साहब ने अपने हाथ से प्यालों में चाय बना-बनाकर सबको दी, और चीनी की रकाबियाँ, जिनमें खाने की चीज़ें थीं, सबके सामने रख दीं । इस तरह चाय-पानी प्रारंभ हुआ । नवलसिंहजी उठा-धरी में लगे थे । उनके पास कपड़े न थे, इसलिये उन्हें भीतर नहीं जाने दिया गया । वह बाहर ही दरवाज़े पर से सब तमाशा देखते रहे ।

कोई आध घंटे में यह खेल ख़त्म हुआ, और सब उठ-उठकर जाने लगे । कोई राजा साहब से हाथ मिलाते, और कोई दूर ही से हाथ जोड़कर बिदाई ले लेते थे । पाँच बजते-बजते सब चले गए । केवल दो लड़के, एक प्रौढ़ा स्त्री और एक लड़की कमरे में बचे । नौकर-चाकर बरतन उठाने और धोने में लग गए । मेहतेजी भी कोई-न-कोई काम करते रहे, पर उनकी नज़र बराबर राजा साहब की ओर ही रही । वह सोचते थे, सब तो चले गए, ये लोग क्यों रह गए ? इधर इन्होंने यह भी देखा कि एक मोटर आकर नीचे खड़ी हो गई । सोचा, अब राजा साहब हवा खाने जायँगे ।

(१७)

तुम चाहना मत राज तक, गुण है मिला जब हे कली !
सोचो तुम्हीं, किसकी घड़ी जग में नहीं चढ़कर ढली ।
मधु के लिये घेरे रहेंगे मधुप रस—वश हो छली ;
मतलब मधुर बहु विधि कहेंगे, तुम मचलना हे कली !
जीवन पराए हाथ है, इस हेतु मत डरना कली !
जगदीश सबके साथ है, कर्तव्य निज करना कली !
हिलकर न खिल जाना कहीं, बिकना पड़ेगा हर गली ;
जिसकी न मर्यादा रही, वह है अधमतम हे कली !

—रामचरित उपाध्याय

*   *   *

रविशे - ख़ास पै मर्दों की न जाना हर्गिज़ ;
दाग़ तालीम में अपनी न लगाना हर्गिज़ ।
नाम रक्खा है नुमाइश का तरक़्क़ी व रिफ़ार्म ;
तुम इस अंदाज़ के धोके में न आना हर्गिज़ ।

*   *   *

सुख़ से पर्दे को उठाया, तो बहुत ख़ूब किया ;
पर्दए - शर्म को दिल से न उठाना हर्गिज़ ।
तुमको क़ुदरत ने जो बख़्शा है हया का ज़ेवर ;
मोल इसका नहीं क़ारूँ का ख़ज़ाना हर्गिज़ ।

*   *   *

नक़द इख़लाक़ को हम नल की तरह हार चुके ;
तुम हो दमयंती, यह दौलत न लुटाना हर्गिज़ ।

—चकबस्त

इतने ही में राजा साहब चाय की मेज़ से उठे, और इन बचे हुए लोगों को साथ ले एक बराबर वाले कमरे में चले गए। नवलसिंह भी आँख बचा उस ओर जाकर उन्हें देखने लगे। यह कमरा बड़ा सजा-सजाया था। राजा साहब एक कोच पर जा बैठे। उनके पास वह प्रौढ़ा स्त्री बैठ गई। सामने बढ़िया कुर्सियों पर वह लड़की और दोनों लड़के जा बैठे। फिर धीरे-धीरे इनमें बातें शुरू हो गईं।

थोड़ी ही देर में वह स्त्री और लड़के उठकर जाने के लिये तैयार हुए। उनके साथ-साथ वह लड़की भी उठने लगी। पर राजा साहब ने रोककर कहा—"इन्हें जाने दो, मैं तुम्हें अपनी मोटर में ले जाकर तुम्हारे मकान पर छोड़ता जाऊँगा। मुझे भी बाहर जाना है। मैं कपड़े पहन लूँ, अभी चलता हूँ।"

उस लड़की को यह बात पसंद नहीं आई, उसने कहा—"जी नहीं, आपको तकलीफ़ करने की ज़रूरत नहीं, मैं तो इनके साथ ही चली जाऊँगी।"

इस पर उस प्रौढ़ा स्त्री ने कहा—"जयंती, क्या हर्ज है, अगर राजा साहब तुम्हें घर छोड़ने को तैयार हैं, तो उनके साथ चली आना। शायद उन्हें तुमसे कुछ और बातचीत करके कोई हिदायत देनी हो।"

इस पर लड़की ने उठकर और आगे बढ़कर उत्तर दिया—"जो कुछ हिदायत देनी होगी, आपके मार्फ़त दी जा सकती है। मैं ग़रीब घर की लड़की हूँ, इस तरह एक बड़े राजा के साथ मोटर में बैठे लोग देखेंगे, तो क्या कहेंगे, और मेरे घर के लोग क्या समझेंगे?"

यह सुन राजा साहब ने कहा—"ओह-हो! तुम सेवा करने चली हो, ऐसी ज़रा-ज़रा-सी बात पर ऐसा ख़याल करने लगोगी, तो देश की क्या सेवा कर सकोगी? तुम्हें तो अपने देश के लिये बड़ी-बड़ी मुसीबतें झेलने के लिये भी तैयार रहना चाहिए।"

इतने में वे लड़के तो बाहर निकल गए, पर स्त्री कमरे में ही खड़ी रही, क्योंकि लड़की ने उसका पीछा नहीं छोड़ा।

राजा साहब की बात सुनकर लड़की ने तनककर उत्तर दिया—"सो तो बिलकुल ठीक है। देश की सेवा में मैं अपनी जान तक देने में पीछे नहीं हटूँगी, पर आपके साथ मोटर में जाने में कौन-सी देश-सेवा है ?"

यह सुन उस स्त्री और राजा साहब में कुछ इशारेबाज़ी हुई। बस, राजा साहब आगे बढ़े, और लड़की का हाथ पकड़ सोफ़े की तरफ़ खींच ले गए।

यह देख लड़की गुस्से से आग हो गई, और लाल-लाल आँखें निकालकर बोल उठी—' यह क्या ? आपको इस तरह मुझे, मेरी इच्छा के विरुद्ध, ज़बरदस्ती बैठालने का क्या हक़ है ?"

राजा साहब ने कहा—"मुझे तुमसे कुछ और काम है। तुम्हारी सेवा के लिये मैं तुम्हें एक भेंट देना चाहता हूँ।"

लड़की ने वैसे ही जोश में कहा—"यदि आप देश-सेवा के निमित्त मुझसे कोई काम लेना चाहते हैं, तो मेरे दल की मुखिया की मार्फ़त कहलाइए। जहाँ तक जानती हूँ, मैंने कोई ऐसी सेवा नहीं की, जिससे मैं ख़ास तौर पर कोई भेंट पाने योग्य होऊँ। यदि आप सब देश-सेविकाओं को भेंट देंगे, तो उनके साथ मैं भी स्वीकार कर लूँगी।"

राजा साहब पर शैतान ने अपना पूरा क़ाबू कर लिया था। अब उन्होंने निर्लज्जता पर कमर कसी। यह उस लड़की की कमर में हाथ डालने तक को तैयार हो गए, और इनकी अब ज़बान खुल गई। बोले—" प्यारी, अभी तक तुम मेरा मतलब नहीं समझीं ! देखो, ज़रा ठहरो, तुम्हें कैसा आनंद आता है, और क्या-क्या चीज़ें मिलती हैं !"

लड़की अब समझ गई कि मेरा जो संदेह था, वह बिलकुल ठीक है। उसने उस स्त्री की ओर देखा, तो वह पीठ फेरकर दीवार की तरफ़ देख रही थी। लड़की इन बातों से ज़रा भी नहीं डरी, बल्कि और उत्तेजित हो, शेरनी की तरह गरजकर, बोली-"मैं तो पहले ही समझ गई थी कि आपके दिल में बुरे विचार भरे हैं। क्या आप लोग इतने बड़े आदमी होकर जो देश-सेवा करने के लिये आगे बढ़े हैं, वह इसी नीयत से? क्या इसी का नाम देश-सेवा है, और इसी तरह जनता का नेता बना जाता है? आपको तो चाहिए कि हम इन सबको बहन-भाई के नाते से बरतें।"

राजा साहब इससे चिढ़ गए, और ज़बरदस्ती उस लड़की को पकड़ने लगे। लड़की झटककर दूर हट गई, और तनककर कहने लगी—'चल हट! नीच, दुराचारी, दुष्ट, चांडाल! तूने क्या हमें बाज़ारी रंडी समझ रक्खा है? क्या तू समझता है, हम जो बरसों से परदे में रहती थीं, जिनके बदन को हवा तक नहीं छू सकती थी, जिनके मुँह सूरज और चाँद तक नहीं देख पाते थे, वे सब लोक-लज्जा ताक़ पर रख, इस तरह दिन-दहाड़े, बाज़ारों में इसी नीच वासना से घूमती हैं? जब हम अपनी जान तक देने को खुले मैदान तैयार हो गई हैं, तो क्या इसलिये कि तेरे-सरीखे नीच की मुट्ठी में आ जायँ? तू तो क्या, अगर यमदेव भी कोई नीच वृत्ति का बर्ताव हमारे साथ करें, तो हम उन्हें भी पाँव की ठोकर से ठुकरा देंगी। तेरे-सरीखे ढोंगी और पापी लोगों ने ही आज देश पर ये सब संकट डाल रक्खे हैं। ऊपर से तुम लोग जनता के अग्रगण्य बनने का नाटक रचते हो, और भीतर तुम्हारे मन में नीचता और दुष्कर्म के भाव भरे हैं। जब तक ऐसे पुरुष इस भारत से काला मुँह न कर जायँगे, हमारे लाख प्रयत्न करने और अपनी जान देने से कुछ न होगा। हम स्त्रियों में भी जब तक ऐसी कुलांगनाएँ (स्त्री की तरफ़ इशारा करके) मौजूद हैं, तब तक देश का उद्धार तो क्या, वह रसातल ही में धँसता चला जायगा!"

यह कह लड़की बेखटके दरवाज़े की तरफ़ बढ़ी। वह स्त्री, जो अबतक मुँह फेरे खड़ी थी, इसकी ओर मुड़ी, और कहने लगी—"जयंती! तू बड़ी धृष्ट मालूम पड़ती है। छोटा मुँह और बड़े बोल! तूने हम लोगों को क्या समझा है? तीन दिन की छोकरी में इतना गर्व! अरे, तू भिखारी-घर की लड़की बड़े आदमियों की बातें क्या जाने? ज़रा चटक-मटककर फिरने लगी, तो बड़ा देश-सेवा का अभिमान आ गया। अगर राजा साहब की बुरी नीयत होती, तो क्या तेरी-सरीखी हज़ारों छोकरियाँ इन्हें नहीं मिल सकतीं? तेरे माफ़िक़ तो इनके यहाँ जूते साफ़ करती होंगी।"

इस स्त्री—जो देश-सेविकाओं की मुखिया बनी हुई थी—के मुँह से ये वचन सुन लड़की अवाक् रह गई। उसने मन-ही-मन कहा—"कोइला होय न ऊजरो, नौ मन साबुन लाय!" और फिर फटकारकर कहा—"ज़रूर! इसीलिये तो यह हमारी कमेटी के प्रेसिडेंट बने हैं, और इसीलिये तो तुम सरीखी कुटनियों को हमारी मुखिया बनाया है। हम ग़रीब हैं, भिखारी हैं, कम उम्र हैं, सब कुछ हैं, पर हमें अपने सतीत्व का अभिमान है। हम झूठे बड़प्पन और धन को धूल समझ पैरों से ठुकराते हैं। हम सरीखी ग़रीब संतान ही देश का मुख उज्ज्वल कर सकेंगी। हमारी ही-जैसी स्त्रियाँ देश की सेवा और उस पर अपनी जान निछावर कर सकेंगी। क्या रावण-समान धनी, पराक्रमी, अभिमानी सती सीता के मन को ज़रा भी डिगा सका था? सत्यता बिना सेवा क्या धूल होगी? जो पैसे के लोभ में अपना धर्म और अपनी इज़्ज़त बेच सकता है, वह अपने देश को भी रुपए-पैसे के लोभ में बेचने से कब रुक सकेगा?"

स्त्री बोली—"बस, हो चुकी बकवाद! चुप रह। आज से देश-सेविकाओं के दल से तुझे निकाल दिया गया।"

लड़की ने ज़मीन पर लात मारकर ज़ोर से कहा—"अरी, जा री कुटनी, तू क्या मुझे सेवा से हटाएगी? अगर सारी सेविकाएँ भी

तुझ-सरीखी बन जायँ, तब भी मुझे देश-सेवा से कौन हटा सकता है ? क्या तू समझती है कि देश-सेवा तेरे इस मंडल के घेरे में ही बँधी है ? मेरे मन में जब सच्ची सेवा करना दृढ़ है, तो मैं अकेले तेरे इस मंडल-भर से ज़्यादा सेवा कर सकूँगी। मैं तो तुम-सी स्त्री का मुँह देखना भी पाप समझती हूँ !" यह कह, तेज़ी से दरवाज़े से निकल, नीचे उतर वह बाहर चली गई।

इस घटना से राजा साहब और स्त्री, दोनों चक्कर में पड़ गए। सोचा क्या था, और हुआ क्या। राजा साहब ने कहा—"यह तो बड़ा बुरा हुआ। यह लड़की सब भंडाफोड़ कर देगी, और हमारा-तुम्हारा, दोनों का मुँह काला होगा !"

स्त्री ने निडर हो मुस्किराते हुए उत्तर दिया—"वाह राजा साहब ! आप भी बड़े डरपोक हैं, ऐसी छोकरियाँ जो ऐसा कर डालें, तो क्या ज़िंदगी-भर हमने ख़ाक ही छानी है ! अगर इसने कुछ मुँह चलाया भी, तो आपके और मेरे मुक़ाबिले इसकी सुनेगा ही कौन ? और, जो इसके मुँह चलाने से कोई यक़ीन भी कर लेगा, तो मैं कैसी हूँ, झट पलटा खा जाऊँगी। कह दूँगी, राजा साहब तो इसकी परीक्षा ले रहे थे, मैं भी तो वहाँ मौजूद थी। मेरी उपस्थिति में क्या कोई ऐसी बात की ढिठाई कर सकता है।"

राजा साहब ज़रा संतुष्ट हुए, और कहने लगे—"क्या ख़ूब ! तुममें तो कमाल के गुण भरे हैं।"

वह स्त्री भी वहाँ से रवाना हुई। जाते समय राजा साहब ने सौ रुपए का नोट चुपके से उसकी मुट्ठी में धर दिया।

यह सब नाटक तो हुआ, पर उनके हृदय में क्या हलचल हो रही थी, उसका हाल सुनिए—

स्त्री जाते समय मन में सोच रही थी—"जयंती का कहना एक-एक शब्द ठीक है। ऐसी ही लड़कियों से देश का उद्धार हो सकेगा। हमने यदि नीचता से रुपया-पैसा कमा भी लिया, तो किस काम का।

अपनी आबरू गँवा चुके हैं। अपना धर्म खो चुके हैं। ऊपर से ढोंग के लिये यदि हमने दूसरों से इज़्ज़त करा भी ली, तो भी हमारा हृदय तो पाप-पूर्ण ही रहा। मन में तो सदा झूठ की ही उधेड़-बुन लगी रहती है। हमें सुख कहाँ? रुपया-पैसा क्या काम आएगा? जब सुख नहीं, तो यह सब जीवन निकम्मा है। झूठी इज़्ज़त में इज़्ज़त नहीं, बल्कि अपमान है। बहुत दिन तक बुरे कर्मों में साथ दिया। बहुत दिन तक झूठे सुख की आशा में जीवन बिताया। अब जब ऐसे सच्चे देश-भक्त मौजूद हैं, तो क्यों न अपने पाप का प्रायश्चित्त कर इनकी शरण लें, और अपने जीवन के शेष दिन सच्ची सेवा करके सुख से बितावें। बस, अब तो जाकर जयंती के पैरों पड़ूँ, और अपने दोषों की क्षमा माँग, उसे अपना आदर्श मान उसके नेतृत्व में काम करूँ।"

राजा साहब के भी मन में ये भाव उत्पन्न हुए—"धन्य हो भारत-बाला! आजकल भी ऐसी लड़कियाँ मौजूद हैं, जिनसे भारत का सिर ऊँचा हो रहा है। मेरे बहन नहीं, पर यदि मुझे ऐसी भगिनी प्राप्त होती, तो क्या मैं उस पर गर्व न करता। इस लड़की को, दीन-ग़रीब-भिखारिन होने पर भी, अपने सतीत्व का कैसा अभिमान था! सामने खड़ी हुई साक्षात् देवी मालूम होती थी। बाज़ारी स्त्रियां और इन देवियों में कितना फ़र्क़ है! वे रुपए-पैसे को अपना देवता और ये सतीत्व तथा धर्म को अपना सब कुछ मानती हैं। क्या ही अच्छा होता, यदि मैं भी दुराचार में न पड़ सत्यता और धर्म के बल खड़ा होता। जब झूठे ढोंग से मेरी आज इतनी इज़्ज़त है, तो अगर मैं सच्ची सेवा करता, तो न-जाने क्या होता!"

यह सोचते-सोचते वह काँपने लगे, मानो उस लड़की की मूर्ति उनकी आँखों के सामने साक्षात् दुर्गा बनकर खड़ी हो गई। उनका हृदय दहल गया, और वह वहीं सिर झुका, हाथ जोड़ यह प्रार्थना करने लगे—"मा, मेरे पाप क्षमा करो!"

नवलसिंह मेहते यह सारा तमाशा दूर से खड़े देख रहे थे, और जो बातें हुईं, उन्हें चुपचाप सुन रहे थे। इस लड़की के साहस और कर्तव्य-परायणता को देख इनका दिल हिल गया, मन-ही-मन कहने लगे—"परमेश्वर ! मेरी ललिता भी इसी के समान पवित्र और सती हो !"

राजा साहब वहाँ से उठ भीतर कपड़े पहनने गए, और थोड़ी देर बाद नीचे उतर मोटर में बैठने लगे। नवलसिंह भी नीचे उतर आए थे, और वह ख़िदमतगार भी अपनी जगह आ खड़ा हुआ था। उसे इन बातों का कुछ पता न था। मोटर में बैठते-बैठते राजा साहब की निगाह नवलसिंह पर गई, और बोले—"यह कौन है ?"

ख़िदमतगार ने धीरे से पास जा उनका हाल कहा।

आज की बातों ने राजा साहब को बड़ा नम्र और सरल-हृदय बना दिया था। कहने लगे—"अच्छा, इसे अपने यहाँ रख लो। सामने की कोठरी बतला दो। छ रुपए महीना वेतन और दोनों वक्त खाने को मिलेगा।"

आज से इनके मन में यह बात आ गई थी कि दीन-ग़रीबों की जितनी भी सहायता हो सके, की जाय।

नवलसिंह मेहते बड़े ख़ुश हुए, और उनके मुँह से अकस्मात् ये शब्द निकल पड़े—"भगवान् आपका भला करें।"

---

(१८)

कह गिरधर कबिराय, दुःख कछु टरत न टरे ;
खटकत है जिय माहिं, कियो जो बिना बिचारे।

कह गिरधर कविराय, यहै करु मन परतीती,
आगे को सुख समुझि, होइ बीती सो बीती।

—गिरिधर

* *

अवगुन मेरे बापजी, बकसु गरीब-निवाज;
जो मैं पूत कपूत हौं, तऊ पिता को लाज।

—कबीर

* * *

फ़र्क़ क्या ज़ाहिरो बातिन का बुरा होता है;
जो ज़बाँ कहती है, दिल सुनके उसे रोता है।
क्या किए जाते हो, क्या मुँह से कहे जाते हो;
कुछ ख़बर है तुम्हें, किस सिम्त बहे जाते हो।

—चकबस्त

राजा साहब मोटर में बैठे चले जाते थे, पर इनके मन में विचारों की घुड़दौड़ बंद नहीं हुई। यह जादूघर में जा बाग़ में टहलने लगे। ललिता के ग़ायब हो आत्महत्या कर लेने की बात इनके हृदय में फिर हरी हो आई। आज इस लड़की के व्यवहार से इनके दिल पर जो असर हुआ था, वह भी ताज़ा था। इनकी आँखें खुल गईं। सोचा—"अब से नीच वासनाएँ छोड़ देना ही उचित है। यह सारा रोब-दाब झूठा है। इन दो लड़कियों के शाप से न-मालूम मेरी क्या गति होगी! रुपया-पैसा सब ठिकाने लग चुका है, ऊपरी ढोंग कब तक बनाए रक्खा जा सकेगा? अब तो सारे दुर्व्यसन छोड़ सच्चे तौर से देश-भक्ति में लगना चाहिए। इससे मान-मर्यादा भी बनी रहेगी, और पिछले सारे पापों का प्रायश्चित्त भी हो सकेगा, एवं मन, जो आज तक झूठे सुख की लालसा में दुखों से जर्जरित हो रहा है, सुखी हो सकेगा। किसी ने सच कहा है—'ज्यों-ज्यों भीजै कामरी, त्यों-त्यों

भारी होय ।' जितना-जितना भोग-विलास करता गया, उतनी ही इच्छाएँ और ज़्यादा प्रबल होती गईं। जैसे रेगिस्तान में मनुष्य को धूप की परछाईं से पानी का समुद्र दिखलाई पड़ता है, परंतु जैसे-जैसे मनुष्य उसके पास जाना चाहता है, वह दूर हटता जाता है, और अंत में पानी मिलता ही नहीं, वैसी ही मेरी दशा है। कल ही से मैं इस झूठे आडंबर को ख़त्म करता हूँ। कोठी, बाग़ और इसके सामान को बेचकर जितना भी हो सके, क़र्ज़ हल्का करता हूँ। आज से ही अपनी चांडाल-चौकड़ी विसर्जन करता हूँ।"

इतना सोचते-सोचते इनकी आँखों के सामने ललिता की मूर्ति आ खड़ी हुई। घर पर जिस तरह जयंती की आराधना की थी, उसी तरह यहाँ भी खड़े-खड़े, सिर झुका कहने लगे—"देवी! क्षमा करो। तुम्हारे विनाश का मैं ही कारण हुआ। तुम्हारी मृत्यु की याद से मेरा दिल टूटा जाता है। तुम अपना शाप लौटा लोगी, तभी मेरी आत्मा को शांति मिलेगी।"

राजा साहब हृदय के आवेग में ये सब बातें इतने ज़ोर से कह गए कि पास में खड़े बाग़बान ने एक-एक शब्द सुन लिया। इसके बाद वह अपने महल वापस चले गए। बाग़बान ने जो कुछ सुना था, जैसे-का-तैसा घर जा ललिता से कह सुनाया। उसकी आँखों में आँसू भर आए, और अकस्मात् मुँह से यह निकल पड़ा—"भगवान् उनका भला करें।"

* * *

उधर उस देश-सेविकाओं की मुखिया ने सीधे जाकर जयंती के पाँव पकड़ लिए, और सच्चा पश्चात्ताप कर रोने लगी।

जयंती को दया आ गई। उसने हाथ पकड़ उसे उठाया, और कहा—"भगवान् की बड़ी कृपा है, जो वह तुम्हें इतनी जल्दी सीधे रास्ते पर ले आए।" फिर सांत्वना दे उसे विदा किया।

स्त्री का हृदय इससे बड़ा हल्का हो गया, और वह अगले दिन से देश-सेविकाओं की सच्ची मुखिया बन गई।

*　　　*　　　*

राजा साहब ने महल लौटकर खाना खाया, और गद्दीघर में न आकर बरामदे में रक्खी झूलती हुई कुर्सी पर जा बैठे। इतने ही में नौकर ने आकर ख़बर दी कि शमशेरख़ाँ आए हैं, और ख़िदमत में हाज़िर होना चाहते हैं। राजा साहब ने बुला लाने को कहा। ख़ाँ साहब ने देखा, राजा साहब के चेहरे का रंग आज कुछ और ही है। झुककर सलाम किया। दूसरी कुर्सी न होने से वह खड़े ही रहे। राजा साहब ने भी और कुर्सी नहीं मँगवाई, इसलिये उन्हें खड़े-खड़े ही, जो कुछ राजा साहब ने कहा, सुनना पड़ा।

राजा साहब बोले—"ख़ाँ साहब, आज तुम मुझे दूसरी तरह का आदमी पाओगे। तुम्हारा कुछ क़सूर नहीं, मेरे ही कर्मों के फल से मुझे तुम-सरीखे शख़्स मिले, और मेरे पाप कर्मों की आग में आहुति देनेवाले बनते गए। अब मैंने सब पिछली बातों को तिलांजलि दे डाली है। तुम्हारे ही बहकाने से मुझे उस गाँव की बालिका को भगा मँगवाने का साहस हुआ, और उसकी हत्या का पाप मैंने अपने मत्थे लिया। ख़ैर, अच्छा ही हुआ। यदि ऐसा न होता, तो न-जाने मुझे कितने और पाप इस संसार में करने पड़ते, और कितने दिनों तक मैं और नरक में घसिटता! उस बालिका की देवी-मूर्ति मेरी आँखों के सामने हर समय घूमा करती है। मैं चाहता हूँ, तुम भी अब कुकर्मों से हाथ धो डालो। यदि तुम सच्चाई से काम करने का वादा करो, तो मैं तुम्हें अपने गाँव में किसी काम पर नौकर रख सकता हूँ।"

ख़ाँ साहब पर भी ललिता की आत्महत्या की ख़बर से बहुत कुछ असर पड़ा था। इधर खाने को भी पास न होने से फ़ाक़ेमस्ती की

नौबत आ गई थी, और दूसरी जगह नौकरी-चाकरी का भी ठिकाना न था। सब बातें सोच उत्तर दिया—"मालिक, मैं क़ुरान की क़सम खा कहता हूँ कि आइंदा से नेक रास्ते पर चलूँगा। हुज़ूर जिस तरह चाहें, दो रोटी इनायत करें।"

राजा साहब ने कहा—"अच्छा, सुबह मेरे पास आना।"

ख़ाँ साहब नीची गर्दन किए, चुपके से, चलते बने, और सीढ़ी उतरते-उतरते सोचते गए—"ख़ुदा की क्या क़ुदरत है, उस नेकबख़्त लड़की ने सबके दिलों पर एक-सा नेकी का असर डाला है।" फिर मन-ही-मन कहा—ऐ मेरे मौला! मुझ पर रहम कर। मैंने सैकड़ों गुनाह किए हैं, उन्हें माफ़ कर बख़्श दे, और आइंदा नेक रास्ते पर चलने की क़ूवत दे—

रहम तेरा हर घड़ी दरकार है,
गर करम कर दे, तो बेड़ा पार है!

इतने ही में कुछ खादीधारी नौजवान लड़कों के आने की इत्तिला नौकर ने राजा साहब से की। उन्हें भी राजा साहब ने वहीं बुलवाया, और बैठे-बैठे कहने लगे—"जवान दोस्तो! मैं यह नहीं कह सकता कि तुमने मुझे ख़राब किया, या मैंने तुम्हें बुरे कामों में उत्तेजित कर बिगाड़ा। मगर अब मुझे अपने पापों का फल अपनी आँखों के सामने दिखाई देने लगा है। आज जयंती के साथ जो बरताव मैंने किया, उससे शर्म के मारे आँख नहीं उठाई जाती। वह कैसी वीर और सती बालिका निकली! उसने मुझे लताड़कर स्वप्न-निद्रा से जगा दिया। अब से मैंने सब नीच कर्मों से हाथ धो डाले। मुझे तुम लोगों पर भी तरस आता है। तुम भी आज से इन बुरे व्यसनों और बुरे कामों को छोड़ दो, और जैसे वस्त्र धारण कर रक्खे हैं, उन्हीं के माफ़िक़ स्वच्छ और सच्चे बनने का प्रयत्न करो। तन, मन और धन से देश-सेवा में प्रवृत्त हो जाओ। आज से सब देश-सेविकाओं

को अपनी सगी बहन समझो, और जो मन की दुर्बलता के कारण अपने पथ से डगमगाती हों, उन्हें भी सहारा देकर सीधे रास्ते पर लाओ। इस कार्य में जितने धन की आवश्यकता पड़े, मैं तुम्हें देने का वचन देता हूं।"

इतने विशाल और इतने गहरे जल में डूबे हुए व्यक्ति के इस आकस्मिक उबार से इन युवकों के हृदय पर भी बड़ा असर पड़ा। इन्होंने भी अपने पूर्व-कर्मों के लिये अपने को धिक्कारा, और माथा झुका कहा—"परमेश्वर की सौगंद खा हम आपसे प्रतिज्ञा करते हैं कि आज से धर्म पर ही चलेंगे, और सब देश-सेवकों को अपना भाई तथा देश-सेविकाओं को अपनी बहन समझेंगे, और मानेंगे।" यह कहते हुए वे सब वहाँ से चले गए।

इसके उपरांत राजा साहब शयन-गृह में सोने गए। आज जन्म-भर में पहले ही दिन ख़ूब सुख की नींद सोए।

---

(१९)

सब कुछ पलट गया है, पलटे न दिन हमारे ;
सौभाग्य पर हमारे किसने नज़र लगाई ?
—गोपालशरणसिंह

नवलसिंह सीढ़ियों के पास बैठे नौकरों के साथ चिलम-तमाखू उड़ा रहे थे। मज़दूरी से लौटने पर देवीसिंह भी आ गए, और इनके पास ज़मीन पर बैठ गए।

नवलसिंह ने देवीसिंह से आज की बीती सब कथा कह सुनाई। पर ख़ाँ साहब से मिलने का कोई मौक़ा नहीं मिला, यह भी कह दिया। ख़ाँ साहब बिला रोक-टोक ऊपर जाया करते थे, इसलिये

जब वह आए, तब नीचे के नौकरों में से किसी को भी उनके आने और पहुँचने की ख़बर तक नहीं हुई। यही वजह थी कि नवलसिंह को भी मालूम नहीं पड़ा, और वह यही समझते रहे कि ख़ाँ साहब यहाँ आए ही नहीं। पर राजा साहब से निपटकर जब ख़ाँ साहब बाहर जाने लगे, तब नवलसिंह और देवीसिंह, दोनो की नज़र उन पर पड़ गई। ये दोनो वहाँ से उठ उनकी तरफ़ दौड़े, और फाटक से निकलते-निकलते उन्हें जा पकड़ा। अकस्मात् उन्हें वहाँ देख ख़ाँ साहब के देवता कूच कर गए। सोचा, अब ख़ैर नहीं। ये जाकर कहीं पुलिस में रपट कर देंगे, तो अभी हथकड़ी-बेड़ी पहननी पड़ेगी। फिर सोचा, इन्हें यह कैसे पता चला होगा कि मैंने ही इनकी लड़की को उड़ाया? और, पता भी चल गया होगा, तो साबित कैसे कर सकेंगे? राजा साहब तो अब सच्चे साधु बन गए हैं। उन्होंने ही इक़बाल कर सब सही हाल बयान कर दिया, तो फिर क्या होगा? इतने ही में उन्हें अपनी प्रतिज्ञा, जो ज़रा देर पहले राजा साहब से की थी, याद आ गई। उन्होंने मन-ही-मन निश्चय किया कि जो कुछ भी हो, अब तो सचाई से ही काम लेंगे। आइंदा जो ख़ुदा को मंज़ूर होगा, वही होगा। बस, यह तय करके उन्होंने कहा—"कहो मेहते, तुम यहाँ कहाँ?"

जैसे बाज़-पक्षी चिड़िया की ओर ऐसी क्रूर दृष्टि से देखता है कि उसे झपटकर, पंजों में दबाकर खा जाऊँ, या वन में शेर किसी गाय-बकरी को हड़प जाने के लिये तैयार रहता है, उसी तरह देवीसिंह ख़ाँ साहब की ओर देख रहा था। नवलसिंह मेहते आँखों-ही-आँखों में उसे डाट रहे थे।

ख़ाँ साहब के प्रश्न के उत्तर में नवलसिंह ने कहा—"गाँव में तो पेट भरना भी कठिन हो गया था, इसीलिये मेहनत-मजूरी करने इधर चले आए। मैं तो इन राजा साहब के यहाँ नौकर हो गया हूँ, और देवी मजूरी करने लगा है।"

दोनों के दिलों में खलबली मची हुई थी। जैसे बात बनाने को ख़ाँ साहब ने प्रश्न किया, वैसे ही बात बरकाने को मेहतेजी ने उत्तर दिया। वह समझते थे कि ललिता के बारे में कुछ यह पूछते हैं, और यह समझते थे कि वह कुछ कहते हैं। ऐसी धकापेल कब तक चल सकती थी? ख़ाँ साहब ताड़ गए कि बेचारा बुड्ढा, जिसकी गाँव में इतनी इज़्ज़त थी, और देवीसिंह, जो गाँव का नाहर माना जाता था, ललिता ही की खोज में मारे-मारे फिर रहे हैं। अब उन्हें इन पर बड़ी दया आई। सोचा, मेरे ही कारण ये घर-द्वार छोड़ टुकड़े-टुकड़े के लिये मुहताज बने फिर रहे हैं।

इधर मेहतेजी भी अब दिल की बात नहीं रोक सके। पूछ ही तो बैठे—"ख़ाँ साहब, हमारी बिटिया ललिता की ख़बर तो तुम्हें नहीं लगी?" जैसे मन में समझ ही लिया हो कि लल्लो के उड़ाए जाने की बात उन्हें मालूम है। यह ख़ाँ साहब का मुँह ताक रहे थे। अगर किसी अनजान आदमी से यह पूछा जाता, तो वह क्या कहता? ख़ाँ साहब भी अगर चाहते, तो यह कह सकते थे कि तुम्हारी लल्लो को मैंने तो तुम्हारे पास गाँव में ही देखा था, मुझे उसकी क्या ख़बर? पर नहीं, अब सचाई ने उनके दिल पर क़ब्ज़ा कर लिया था, इसलिये अपनी प्रतिज्ञा फिर से याद कर, आँखों से आँसू ढलकाकर उन्होंने बड़ी नम्रता से कहा—"मेहतेजी! मेरी ही नालायक़ी और कमीनेपन की वजह से तुम्हारी लड़की की जान गई, और वह अब इस दुनिया में ज़िंदा नहीं है।" और, फिर गाँव से उड़ा लाने और उसके आत्महत्या कर लेने तक की सारी कहानी कह सुनाई।

यह सुन बुड्ढे की छाती फटने लगी। उसने पूछा—"तुमने अपनी आँखों से उसे मरा हुआ देखा है क्या?"

इस पर ख़ाँ साहब ने उसकी लिखी जो चिट्ठी मिली थी, उसका हाल कहा, और बोले—"अपनी आँखों से तो उसे मरा हुआ किसी ने भी नहीं देखा।"

यह सुन देवीसिंह गरजकर बोला—"कक्का, यह सब झूठ है। इसी ने वाको कहीं छुपा रक्खा है।"

नवलसिंह ने उसे समझाकर कहा—"बेटा, नहीं। ख़ाँ साहब अब पिछले ख़ाँ साहब नहीं दिखलाई पड़ते। इनकी आँखें कह रही हैं कि जो कुछ इन्होंने कहा है, सब सच है। जिनके यहाँ मैं नौकर हुआ हूँ, वह राजा साहब सचमुच बड़े अधम थे, पर आज मैंने अपनी आँखों देखा, वह पल-भर में और के और हो गए। चलो, अब अपनी कुठरिया में चलो, वहीं अपना सिर फोड़ेंगे।

इस समाचार से दोनो को कितना आघात पहुँचा था, ख़ाँ साहब भली भाँति समझ रहे थे। वह भी अत्यंत दुखी हो रहे थे, और अपने आपको धिक्कारकर कह रहे थे—"हाय, मैं कैसा कमबख़्त हूँ, मेरी ही वजह से यह सब सत्यानास हुआ। मुझे ख़ुदा कैसे बख़्शेगा!"

ख़ाँ साहब ने मेहतेजी के हाथ जोड़ कहा—"अब सिवा सब्र करने के और क्या हो सकता है। तुम मुझे बुरा-भला कहना तो क्या, अगर मेरे टुकड़े-टुकड़े भी कर डालो, तो भी मुझे आर न होगी। मैं तो इसी क़ाबिल हूँ कि मेरी खाल खिंचवाई जाय, और कुत्ते तथा गिद्ध मेरा गोश्त खायँ!"

मेहतेजी बिना किसी बात का जवाब दिए, सिर झुकाए महल की ओर चल दिए, और देवीसिंह का हाथ पकड़ अपने साथ घसीट ले गए।

अपनी कुठरिया में पहुँच नवलसिंह बोले—"देवी, कुछ भी हो, मेरा मन तो यही कहता है कि लल्लो जीती है।"

देवीसिंह बोला—"यही तो मैं कहता था, तुमने ज़रा उसे ठीक तो करने नहीं दिया। दो-चार जूते पड़ते, तो अपने आप सब उगल देता।"

मेहते ने शांत भाव से कहा—"बेटा तुम, अभी आदमी नहीं पहचानते। भगवान् की ऐसी लीला है कि एक पल में राजा को रंक और रंक को राजा बना देता है। उन्हीं भगवान् ने अब इन दुष्टों का मन बदल इन्हें उबारना चाहा है।"

फिर उस देश-सेविका लड़की और राजा साहब का सारा हाल कह सुनाया।

देवीसिंह ने सब सुनकर कहा—"अच्छा कक्का, तो अब धीरज धरने से ही काम चलेगा। भगवान् चाहेंगे, तो हमारी लल्लो हमें ज़रूर मिल जायगी।"

यह कह दोनो ज़मीन पर लुढ़क रहे, पर नींद नहीं आई।

---

(२०)

स्वामी होनो सहज है, दुर्लभ होनो दास;
गाडर लाए ऊन को, लागी चरन कपास।
साहब ते सेवक बड़ो, जो निज धर्म सुजान;
राम बाँधि उतरे उदधि, लाँघि गए हनुमान।

—तुलसीदास

पचास बरस से ज़्यादा हुए होंगे, तेजसिंह-नामक एक बड़े रईस लखनऊ में रहते थे, पास में लाखों रुपए थे, पर ज़मीन-जायदाद में एक पैसा भी न लगाते थे सारा रुपया गाड़कर रक्खा था। सुनते हैं, ग़दर के वक़्त इनके पूर्वज लखनऊ आकर बस गए थे। तेजसिंह थे बड़े दानी और धर्मात्मा। लाखों रुपए पुण्य-धर्म में ख़र्च करते। परमेश्वर ने दो बड़े सुंदर और होनहार पुत्र प्रदान किए थे। एक का नाम ऊधोसिंह था, और दूसरे का माधोसिंह। तेजसिंह ने इन्हें ख़ूब पढ़ाया-लिखाया। उस ज़माने में इनकी जाति में बहुत कम लोग अपने लड़के विलायत पढ़ने को भेजते थे। पर इनकी एक अँगरेज़ सौदागर से, जो २-४ साल से माल ख़रीदने और बेचने भारतवर्ष आया करता था, गहरी दोस्ती

हो गई थी । उसकी सलाह से इन्होंने दोनो बेटों को विलायत पढ़ने भेज दिया। वहाँ से दोनो खूब पढ़-लिखकर वापस आए। तेजसिंह जैसे ज़मींदारी के काम से ख़ुश न थे, वैसे ही नौकरी भी पसंद न करते थे। उन्होंने अपने दोनो पुत्रों को वाणिज्य-व्यवसाय में लगा दिया। कुछ बरस बाद तेजसिंहजी का परलोकवास हो गया। ऊधोसिंह और माधोसिंह बड़े प्रेम से आपस में मिलकर रहते थे। दोनो के विवाह हो गए थे, पर संतान किसी के भी न थी। उन्होंने अपना कारबार इतना बढ़ाया कि भारत के प्रत्येक बड़े शहर में इनके फ़र्म की शाखा थी।

इसी बीच में योरप का प्रसिद्ध महायुद्ध छिड़ गया। जैसे युद्ध के समय हज़ारों व्यवसाय करनेवाले लाखों-करोड़ों रुपए बना बैठे, उसी तरह हज़ारों को उसने तबाह भी कर डाला। हमारे ऊधोसिंह और माधोसिंह को भी अटूट घाटा हुआ, और उन्हें अपनी दूकानें बंद कर देनी पड़ीं। इनके पिता के अँगरेज़ मित्र ने सलाह दी कि दोनो विलायत आ जायँ। वहाँ कोई सिलसिला रोज़गार का लग जायगा। बस, उन्होंने अपना सारा कारोबार समेट कुटुंब-सहित विलायत जाना निश्चय किया, और महीने-भर के अंदर-ही-अंदर रवाना हो गए।

वहाँ जाकर देखा, तो वहाँ की दशा यहाँ से भी ख़राब थी। ऊधो-सिंह ने बैरिस्टरी पहले ही से पास कर ली थी, इसलिये अपने पिता के अँगरेज़ मित्र की सहायता से उन्होंने लंदन की प्रिवी कौंसिल में वकालत शुरू कर दी, जिससे जैसे-तैसे दोनो भाइयों का निर्वाह होने लगा।

भगवान् की लीला विचित्र है! जब पेट भरने का ठिकाना लगा, तो ऊधोसिंह की पत्नी का स्वास्थ्य ख़राब होना शुरू हुआ, और दो-तीन महीने ही बीमार रहकर उन्होंने अपनी देह त्याग दी। इस घटना से सबका मन बहुत खिन्न हुआ, और वे जैसे-तैसे अपने दिन काटने लगे। एक साल बाद माधोसिंहजी के कन्या उत्पन्न हुई। उसका नाम रक्खा गया ललिताकुँवरि। फिर गृहस्थी में सुख के बीज फलते हुए, से

मालूम होने लगे। माधोसिंहजी ने भाई से एक रोज़ कहा—"यदि आप आज्ञा दें, तो एक बार भारतवर्ष का चक्कर लगा आऊँ। देखूँ, वहाँ की स्थिति अब कैसी है। यदि वहाँ फिर व्यवसाय जम जाने की आशा होगी, तो आपका परामर्श लेने के बाद कुछ व्यवस्था करेंगे। यहाँ निकम्मे पड़े रहकर मेरा मन व्याकुल हो जाता है।"

पहले तो बड़े भाई ने नाहीं-नुकर की, पर बाद को यह सोचा कि एक बार घूम भी आने दो, आज्ञा दे दी। उन्होंने अगले महीने ही 'अलहंब्रा' जहाज़ द्वारा हिंदोस्तान को प्रस्थान कर दिया।

❀ ❀ ❀

हाँ, एक बात रह गई, माधोसिंहजी के पास एक हिंदू नौकर था, जो पिता के समय से ही था। उसका इनसे कुछ ऐसा प्रेम हो गया था कि इन्हें नहीं छोड़ता था। उसकी गृहस्थी गाँव में रहती थी, पर वह रात-दिन इन्हीं के यहाँ रहता। इनके अच्छे दिनों में उसकी चली भी ख़ूब। जब इन्होंने हिंदोस्तान से कारोबार उठा विलायत जाने की ठानी, तब उसने भी साथ चलने के लिये ज़िद की। इन्होंने बहुत कहा कि वहाँ नौकर ले जाने की ज़रूरत नहीं होती, और तुम बेपढ़े वहाँ जाकर क्या काम आओगे। पर उसने एक न मानी। माधोसिंहजी की स्त्री भी इसे घर का-सा आदमी समझने लगी थी। उसने भी पति से इसे ले चलने का अनुरोध किया, और इस तरह यह नौकर भी विलायत गया। इसका नाम था नवल, पर लोग नौले कहकर पुकारते हैं

जब माधोसिंह और उनकी स्त्री अपनी एक वर्ष की कन्या के साथ हिंदोस्तान वापस आने लगे, तब नवल ने भी चलने को कहा। इस पर ऊधोसिंह ने कहा भी कि तुम अभी जाकर क्या करोगे, यहीं रहो, अगर इनका वहाँ रहना तय हो जाय, तो तुम चले जाना। पर इसने एक न मानी, बोला—"वाह, लल्ला को खिलाएगा कौन?"

आख़िर इसे भी माधोसिंहजी ने साथ ले लिया। इस तरह यह सारी गृहस्थी विलायत से हिंदोस्तान रवाना हुई।

कई दिन तक जहाज़ बहुत अच्छी तरह सफ़र करता रहा। सब लोग आनंद-मंगल से दिन-रात खेल-कूद और बातचीत में समय बिताते थे। एक रोज़ अकस्मात् जहाज़ के घंटे बजने लगे। सब लोग भयभीत हो बाहर डेक पर आ खड़े हुए। इतने ही में जहाज़ के कप्तान ने ख़बर दी कि जहाज़ एक बड़ी चट्टान से टकरा गया है, जल्दी से मुसाफ़िर अपने-अपने लाइफ़ गार्ड (जो मोटर के पहिए की तरह सफ़ेद रंग के होते और हरएक मुसाफ़िर के केबिन में रक्खे रहते हैं) पहनकर तैयार रहें। अगर जहाज़ डूबता मालूम पड़ा, तो जितने भी लोग बचाए जा सकेंगे, किश्ती के ज़रिए बचाए जायँगे।

इस ख़बर से सब यात्रियों में हलचल मच गई। सब तरफ़ हाहाकार सुनाई दिया।

माधोसिंह, उनकी स्त्री और नवल ने भी यह घोषणा सुनी। माधोसिंह ने अपना बक्स खोला। उसमें से एक सोने का तावीज़-सा, जिसमें हीरा जड़ा था, निकाला। एक काग़ज़ के टुकड़े पर अपनी पुत्री का, अपना और अपनी स्त्री का नाम तथा उस दिन की जहाज़ की घटना का वृत्तांत लिख, तारीख़ डाल, अपने दस्तख़त कर उस तावीज़ में रक्खा, और उसे अपनी नन्ही-सी कन्या के गले में बाँध दिया। नवल को बुला कन्या उसके सुपुर्द की, और उस तावीज़ का भी हाल कह दिया, और कहा—"अगर तुम और कन्या जीवित बच जाओ, तो इस कन्या के गले का तावीज़ उसे पहने रहने देना, और जब वह बालिग़ हो जाय, तब अगर वह चाहे, या किसी समय उसके माता-पिता की बाबत कोई प्रमाण देने की आवश्यकता पड़े, तो इस तावीज़ को खोलकर बता देना। अगर हम जीवित बच गए, तब तो कुछ बात ही नहीं। यह समुद्र है, और जहाज़! यहाँ क्या बीते, सो किसी को

मालूम नहीं। अगर तुम इस बालिका-सहित जीवित रह जाओ, तो इसकी पूरे तौर पर सँभाल रखना, बल्कि इसकी अपनी ही पुत्री की भाँति रक्षा करना।" यह कह वह और उनकी पत्नी, दोनों ने लाइफ़-बेल्ट पहन लिए।

जहाज़ में पानी भरने लगा। वह धीरे-धीरे नीचे समुद्र में धँसने लगा। कप्तान ने जहाज़ पर की नावों को खोलने का हुक्म दिया। सारे यात्री—पुरुष, स्त्री और बच्चे—चिल्लाते-डकराते इधर-उधर फिरने लगे। कोई नाव में और कोई समुद्र में कूदता दिखलाई दिया। सब घबराकर अपनी-अपनी जान बचाने की फ़िक्र में पड़े थे। एक दूसरे को किसी की खोज-ख़बर न थी। नवल भी उस छोटी-सी कन्या को कपड़े से कमर में बाँध दूसरों की तरह एक नाव में जान बचाने के लिये कूद पड़ा।

❀ ❀ ❀

नवल ने जब आँखें खोलीं, तो अपने को समुद्र के किनारे, एक बंदर पर, और रोगियों के साथ, पलँग पर पड़े पाया। होश आते ही उस छोटी कन्या (जिसे वह लल्लो कहकर पुकारता था) के बारे में पूछा। डॉक्टर ने कहा, वह बिलकुल अच्छी है। इस पर इसे शांति मिली। थोड़ी देर में एक अँगरेज़ नर्स ने उस बच्चे को गोद में लाकर इसे दिखलाया। उसे देख नवल प्रसन्न हो गया।

अच्छे होने पर इसे मालूम हुआ कि जहाज़ डूब गया, और केवल पचास यात्री बचाए जा सके। इनमें अधिकतर अँगरेज़ थे। हिंदोस्तानियों में केवल वह और दूसरा एक पारसी बचा था। बाक़ी किसी का भी पता न चला।

नवल अपने मालिक और मालकिन के वियोग से बहुत दुःखित हुआ, और ख़ूब रोया-पीटा। पर ज़्यादा रोने में भी डर मालूम पड़ता था, क्योंकि वहाँ सब गोरे थे। वह ग़रीब काला हिंदोस्तानी नौकर था।

दो-चार रोज़ बाद इसे उस लड़की को सौंप, एक जहाज़ पर बिठा हिंदोस्तान भेज दिया गया।

इसने अपना पता बता दिया था, इसलिये रास्ते का कुल ख़र्च उठाकर जहाज़वालों ने इसे लखनऊ तक पहुँचा दिया।

इस तरह हमारे पाठकों से परिचित नवलसिंह अपने मालिक माधोसिंह की पुत्री—नन्ही-सी बालिका ललिताकुँवरि—को गोद में ले अपने गाँव तरनतारन पहुँचे, और वहाँ रहकर मेहतेजी कहलाए जाने लगे। ऊपर कह दिया गया है कि गाँव में जाकर इन्होंने ललिता को अपनी बेटी बताया, और ललिताकुँवरि उस गाँव-भर की लल्लो बन गई।

ललिता बेचारी को क्या मालूम कि वह एक विख्यात धनी की कन्या है—नवलसिंह मेहते की नहीं, वरन् माधोसिंह की पुत्री है।

---

(२१)

अफ़सानए-क़ैसोकोहकन याद नहीं ;
चाहो, तो कथा हमसे हमारी सुन लो।

—हाली

* * *

अब ज़रा मुझसे सुनो इसकी कथा ;
क्यों विकल है आँख रहती सर्वथा।
है किसी की मूर्ति उसमें बस रही ;
बस, इसी से हो रही उसको व्यथा।

—गोपालशरणसिंह

समाचार-पत्रों द्वारा जब 'अलहंब्रा' जहाज़ के डूबने के समाचार संसार-भर में फैल गए, तब लंदन में माधोसिंह के बड़े भाई ऊधोसिंह को

भी यह हाल मालूम हुआ। वह दौड़े-दौड़े जहाज़वालों के दफ़्तर पहुँचे। वहाँ जो जीवित थे, उनके नामों की सूची रक्खी थी। उसमें इनके भाई और भौजाई, दोनो का नाम न था। नौकर नवल का नाम तो होता ही कहाँ से, क्योंकि वह थर्ड क्लास का पैसिंजर था। बस, बेचारे माथा ठोककर रह गए, और मरे हुए-से घर लौटे। सोचा—बस, अब मेरी अकेली जान रह गई है, बाक़ी सारे घर का तो नाश हो ही चुका। कई दिन इसी तरह रंज में पड़े-पड़े काटे। बाद में पेट की फ़िक्र सवार हुई, और फिर अपने धंधे में लग गए।

मालूम होता है, परमेश्वर ने भी इनके दुखों का बदला अब सुख से देना स्वीकार कर लिया। इनके दिन फिरने लगे, और थोड़े ही समय में इनकी प्रैक्टिस (वकालत) ख़ूब चमक गई, और दो-चार साल बाद तो 'मिस्टर सिंह' लंदन में एक बड़े मशहूर और धनी बैरिस्टर गिने जाने लगे।

मालूम नहीं, इतने बड़े व्यक्ति हो जाने पर इन्हें अपने कुनबे की याद आई या नहीं, और इन्होंने उसकी याद में कभी आँसू बहाए या नहीं। पर इस घटना के पंद्रह बरस बाद जो घटना हुई, उससे यह प्रतीत होता है कि इनके दिल में अपने छोटे भाई और उसकी संतान की ज़रूर याद रही। क्योंकि अभी एक सप्ताह हुआ, बंबई के एक मशहूर अँगरेज़ सॉलीसिटर के पास विलायत के एक सॉलीसिटर की चिट्ठी आई, और उसमें यह लिखा था—

"हिंदोस्तान के एक मशहूर बैरिस्टर का, जिनका नाम मिस्टर ऊधोसिंह था, और यहाँ मि० सिंह के नाम से प्रिवीकौंसिल में प्रैक्टिस करते थे, गत जुलाई महीने में हृदय-रोग से देहांत हो गया। उन्होंने बहुत बड़ी जायदाद छोड़ी है, और अपने वसीयतनामे में यह लिखा है कि उनके भाई माधोसिंह और उनकी कन्या का, जिसकी उम्र इस वक़्त, १९-१६ साल की होगी, और जिसका नाम ललिताकुँवरि है, अच्छी

तरह पता चलाया जाय कि वे जीवित हैं, या नहीं। ये लोग 'अलहंब्रा' जहाज़ से, जो सन् १९१८ में हिंदोस्तान आ रहा था, रवाना हुए थे, पर जहाज़ डूब जाने पर 'मिसिंग लिस्ट' में दर्ज हुए, और आज तक उनका कोई पता न चला। वसीयतनामे की तामील के लिये यहाँ के तीन बड़े आदमी ट्रस्टी नियत हुए हैं। वसीयतनामे में यह शर्त रक्खी गई है कि यदि उनके भाई माधोसिंह और उनकी कन्या दोनो जीवित मिल जायँ, तो सारी जायदाद उनके सिपुर्द कर दी जाय। अगर माधोसिंहजी भी मर गए हों, और कन्या ललिताकुँवरि ज़िंदा हो, एवं उसका विवाह न हुआ हो, तो आधी जायदाद उसके सिपुर्द की जाय, उसका विवाह ट्रस्टियों की मरज़ी से किया जाय, और आधी जायदाद उनके नाम से ख़ैराती कामों में लगाई जाय। अगर वे दोनो जीवित न हों, तो सब जायदाद उनके नाम से ख़ैराती कामों में, जिनमें ट्रस्टी लगाना पसंद करें, लगा दी जाय। इसलिये आप अच्छी तरह जाँच और तहक़ीक़ात करके इस बात की तस्दीक़ी रिपोर्ट भेजें।"

ये अँगरेज़ सॉलीसिटर बड़े भरोसे के हैं, और हर मामले की पूरी जाँच किया करते हैं। बंबई के मशहूर डिटेक्टिव रघुवीरसिंह अभी हाल ही में, जर्मनी और अमेरिका से, इस काम की शिक्षा ग्रहण कर आए हैं। इनकी उम्र अभी २६-२७ वर्ष की है, पर इसी छोटी उम्र में इन्होंने दस-पाँच ऐसे मार्के के मामलों की जाँच की है कि बंबई-भर में इनका नाम मशहूर हो गया है। ख़ुफ़िया-महकमे के बड़े-से-बड़े अफ़सर भी इनसे सलाह लेने आते हैं। सुना तो यह भी गया है कि गवर्नमेंट ने इन्हें भारी वेतन देकर नौकरी करने के लिये आग्रह किया था, पर यह नौकरी करना ही नहीं चाहते। इनका कहना है—"मैं प्राइवेट तरीक़े पर ही काम करूँगा। रुपए-पैसे की मुझे कामना नहीं। मैं तो केवल दोषी-अपराधियों को उचित दंड दिलाना, ग़रीबों का इंसाफ़ कराना और जिस तरह भी देश-भाइयों की सेवा हो सके, करना अपने जीवन का उद्देश समझता हूँ।"

जिस समय अँगरेज़ सॉलीसिटर ने इन्हें बुलाकर विलायत का आया हुआ पत्र दिया, यह दत्तचित्त हो पढ़ने लगे, और यह वादा कर कि पता चलाकर जल्द रिपोर्ट करूँगा, असल पत्र जेब में डाल दफ़्तर से बाहर निकले। वहाँ से टैक्सी ले नई चौपाटी पहुँचे। शाम का समय हो गया था, इसलिये फ़ुटपाथ की मुँडेर से नीचे उतर समुद्र के किनारे पत्थर के टीलों पर, बैठ गए। जेब से एक सिगार निकाला, और दिया-सलाई से सुलगाकर मुँह से धुआँ निकालने लगे। फिर पत्र जेब से निकाल बड़े ग़ौर से दुबारा पढ़ा। सोचने लगे, जिनका पता लगाना है, वे कोई मेरी जातिवाले ही मालूम होते हैं। फिर जब उसमें एक नवोढ़ा बालिका के बारे में पढ़ा, तो न-जाने क्यों इनका दिल भीतर-ही-भीतर चंचल-सा होने लगा!

यह बड़े सच्चरित्र और सच्चे देश-भक्त थे। इनके विचार बड़े गंभीर और सत्यता के होते थे, इसलिये बड़े-बड़े राजनीतिक नेता भी समय-समय पर इनकी सलाह लिया करते थे। इन्होंने मन-ही-मन सोचा—मैंने सब जातियों की हज़ारों स्त्रियाँ देखी हैं, अपनी भारतीय महिलाओं को माता और बहन मानकर मैं उनसे हर रोज़ मिलता हूँ, कहीं भी मेरा हृदय विचलित नहीं हुआ। मैं समझता था, स्त्री-जाति का जादू मुझ पर असर नहीं कर सकता। इसी कारण मैं अब तक अविवाहित रहा हूँ, और जन्म-भर तक क्वाँरा ही रहना चाहता हूँ। फिर इस पत्र का विवरण और ख़ासकर उस बालिका का नाम पढ़ते ही न-जाने क्यों मेरे दिल में कुछ हलचल-सी, कुछ चंचलता-सी और कुछ धड़कन-सी मालूम होने लगी! मैंने तो उस बालिका को देखा भी नहीं, बल्कि अभी तक जीवित है या नहीं, इसका ही निश्चय नहीं। इसी जाँच का भार ही तो मेरे सुपुर्द किया गया है। फिर बेजाने-पहचाने व्यक्ति की ओर यह हृदय क्यों झुका पड़ता है, समझ में नहीं आता।

इसी तरह रघुवीरसिंह आँखें बंद किए, समुद्र की लहरें गिनते

और मन में उधेड़-बुन करते जाते थे। साथ-ही-साथ मुँह के सिगार से धुआँ भी उड़ाते जाते थे।

फिर कुछ सोचकर मन-ही-मन कहने लगे—हमारी जातिवाले मालूम होते हैं, विलायत जाकर बसे हैं, वहाँ इतना नाम कमाया है, तो मामूली आदमी तो हो ही नहीं सकते। अपने घर में जो जातीय लोगों के बारे में मेरे नोट हैं, शायद उनसे पता चल जायगा। अगर किसी अन्य शहर के हुए, तो वहाँ भी जाना पड़ेगा।

इस तरह विचारों में मग्न रघुवीरसिंह बहुत देर तक बैठे रहे। फिर उठे, और टैक्सी ले अपने घर लौटे।

घर पहुँचकर दिल में आया, पहले नोट पढ़ लें, फिर खाना खायँ। सोचा, इस मामले में मैं इतना लीन क्यों हुआ जा रहा हूँ। मेरा दिल यह क्यों कहता है कि पहले इसके मुताल्लिक़ काग़ज़ात देखूँ, फिर खाना खाऊँ। इसमें परमेश्वर की ओर से कोई-न-कोई प्रेरणा अवश्य मालूम पड़ती है।

इन्होंने अपने बेग से नोटबुक निकाली, और मेज़ पर जा, एक लाल पेंसिल ले, ग़ौर से प्रत्येक पृष्ठ पढ़-पढ़कर पलटने लगे। जिस प्रकार अँगरेज़ी में 'हूज़ हू' पुस्तक होती है, उसी प्रकार इनकी नोटबुक इनके जातीय लोगों की 'हूज़ हू' थी।

देर तक पढ़ने पर पता चला—तेजसिंह बड़े रईस थे, उनके दो लड़के विलायत पढ़ने गए थे, लौटने पर उन्होंने नौकरी करने के बजाय व्यवसाय-धंधे शुरू किए। यह भी मालूम हो गया कि वे लखनऊ में रहते थे।

बस, इन्होंने थोड़ी देर तक आँखें बंद करके कुछ सोचा, और फिर नौकर को भोजन लाने के लिये आवाज़ दी।

(२२)

अद्भुत बात सनेह की, सुनहु सनेही आइ;
जाकी सुध आवे हिये, सबही सुध-बुध जाइ।

—रसनिधि

रघुवीरसिंह बंबई में, बालकेश्वर-पहाड़ी पर, एक छोटी-सी कोठी में, रहते हैं। स्थान जैसा रमणीक है, वैसी ही कोठी भी अंदर से बिलकुल सादे तौर पर, परंतु रुचि-पूर्वक सुसज्जित है। कमरे अँगरेज़ी ढंग से सजे हैं, पर सामान सब देशी है। अक्सर देखा गया है कि यदि आप ऐसे मालिक के घर जायँ, जिसका विवाह न हुआ हो, तो उसके अविवाहित होने का पता घर की सज-धज और उसके उथले-पुथले सामान से ही लग जाता है; पर इनकी कोठी से यह बात समझना मुश्किल है। सब चीज़ें सलीक़े से, जहाँ-की-तहाँ, अपनी-अपनी जगह, रक्खी थीं। दफ़्तर के काग़ज़ और किताबें भी उलटी-पलटी और इधर-उधर नहीं पड़ी थीं, बल्कि सब चुनी हुई रक्खी थीं। तो क्या गृह-लक्ष्मी न होने पर भी यह अपने आप सब काम कर लेते थे? नहीं, इन्हें इतना समय कहाँ! इन्हें तो घर के दर्शन भी नियमित समय के अलावा नहीं होते थे। बात यह थी कि इन्होंने अपने सेवकों को ऐसा होशियार बना लिया था कि घर का सारा काम घड़ी की मशीन की तरह चला जाता था।

भोजन करने के पश्चात् यह एक खिड़की के सामने आरामकुर्सी पर लेट सिगार पीने लगे। खिड़की से बाहर समुद्र का दृश्य दिखाई देता था। दूर से कोलाबा की बिजली की रोशनी और इधर चौपाटी की रोशनी अत्यंत मनोरंजक मालूम होती थी। और, रोशनी का अक्स समुद्र के पानी पर पड़कर बड़ा मनलुभानेवाला था।

इसी तरह सिगार का धुआँ उड़ाते और इस क़ुदरती नज़ारे का लुत्फ़ लूटते हुए यह अपने मन में कुछ उधेड़-बुन भी करते जाते थे; जैसे कोई कॉलेज का विद्यार्थी किसी रमणीक स्थान की शोभा निहारता हो, पर मन में गणित का कोई कठिन प्रश्न सुलझा रहा हो।

कुछ देर बाद इन्हें उबासी आने लगी, और आँखें भी झपने लगीं, मानो निद्रादेवी ने अपने आगमन की सूचना इन पेशवा (आगे की सेना) को भेजकर करा दी। यह चुपचाप उठे, और सोने के कमरे में जाकर पलँग पर लेट गए। सोते समय ध्यान आया कि आज की संध्या का समाचार-पत्र नहीं देख पाए, उसके लिये आज ज़रा भी समय नहीं मिल सका। पलँग पर लेटते ही नींद आ गई।

इन्होंने अपने ऊपर फ़िक्र को कभी सवार नहीं होने दिया था, इसीलिये इन्हें स्वप्न कभी नहीं दिखाई पड़ते थे। पर आज रात को न-जाने क्या बात हुई कि इन्हें बार-बार स्वप्न दिखाई दिए, और यह कई बार पलँग पर उठकर बैठ गए, मानो स्वप्न की किन्हीं बातों ने इन्हें जगाकर बिठा दिया हो। जब जागकर उठते, आँखें मलने लगते। इन्होंने सोचा, आज क्या विशेष बात है, जिसने मुझे ऐसा हैरान कर रक्खा है कि अच्छी तरह सो भी नहीं सकता।

रघुवीरसिंहजी! तुम अभी सच्चे प्रेम से नावाक़िफ़ हो। तुम्हें क्या मालूम कि बिना किसी व्यक्ति से मिले या देखे भी जब ऐसी बात होनेवाली होती है, तो भगवान् स्वयं हृदय में उसका बीज बो देते हैं। तुम ललिताकुँवरि से मिले नहीं, बल्कि उसे देखा भी नहीं, यह सब सच है। तुमने सैकड़ों ऐसे मामलों की जाँच-पड़ताल की है, जिसमें स्त्रियों और लड़कियों का समावेश हुआ है, इसलिये ललिताकुँवरि को ढूँढ़ने या उसके बारे में पता चलाने का कार्य तुम्हारे लिये कोई नया नहीं है। पर इसमें कोई दैविक बात अवश्य जान पड़ती है, नहीं तो ये असाधारण बातें क्यों तुम्हारे नियमित कार्य-क्रम में आकर खड़ी हो

आतीं। तुमने सुना होगा, एक उर्दू-कवि ने कहा है—

इश्क़ सुनते थे जिसे हम, वो यही है शायद ;
ख़ुद-ब-ख़ुद दिल में है इक शख़्स समाया जाता।

तुम अभी इसे परमात्मा की ओर से अपने कार्य में सफलता का संकेत ही समझो। हमें एक उर्दू-कवि का दूसरा वाक्य याद आया है। कहा है—

इब्तिदाए-इश्क़ है, रोता है क्या ;
आगे-आगे देखिए, होता है क्या !

बस, इस तरह उचटती हुई नींद से इनकी आँख बहुत तड़के ही खुल गई।

रघुवीरसिंह ने उठकर, ज़रूरियात से फ़ारिग़ हो स्नान किया, और सुबह की चाय पी। इनके मन में आया कि आज सॉलिसिटर साहब के दफ़्तर में जा कह दें कि मुझे कुछ-कुछ भेद मिल गया है, और आगे खोज करने के लिये लखनऊ जाना पड़ेगा। फिर उठकर रेलवे-टाइम-टेबिल निकाला। देखा, तो लखनऊ जाने के लिये गाड़ी का समय ९ बजे सुबह का था। सॉलिसिटर से मिलने और बातचीत करने में एक दिन लग जायगा। (बात तो यह थी कि इनका मन ऐसा चंचल हो रहा था कि थोड़ी देर भी बुरी लगती थी। दिल की लगी ऐसी ही होती है।) फिर सोचा, जासूस लोग कहाँ ज़रा-ज़रा-सी बात दूसरों से प्रकट करते हैं। मामले को अंत तक सुलझाए बिना बीच में अपने विचार प्रकट करना ठीक नहीं। इसलिये सॉलिसिटर साहब को एक ऐसी चिट्ठी लिख देना ही काफ़ी होगा कि मैं उस मामले में लखनऊ जा रहा हूँ। बस, यह निश्चय कर वह उठे, और एक पत्र सॉलिसिटर साहब को लिख डाक में डालने को भेज दिया।

अब यह लखनऊ के परिचित मित्रों की सूची मन में दोहराने लगे। इनके वहाँ कई मित्र थे। ज़रा सोचने के बाद तय किया कि लखनऊ में

जो डॉक्टर अयोध्यानाथ हैं, उन्हें ही अपने आने की सूचना देना उचित है। बस, एक ज़रूरी तार लिखकर नौकर को जेनरल टेलिग्राफ़-ऑफ़िस में देने के लिये भेज दिया, और ड्रेसिंग-रूम में जा एक चमड़े के बक्स में पहनने के कपड़े रक्खे। अटेची-केस में कुछ काग़ज़ात और किताबें और हैंडबेग में हजामत का सामान तथा कुछ छोटी-मोटी चीज़ें रक्खीं। नौकर से बिस्तरबंद में बिस्तर बाँधने को कहा, और बाहर की बेलकनी में आ, एक सिगार निकाल फूँकना शुरू किया। हाथ की घड़ी देखी, तो ८॥ बज चुके थे। झट अपने सफ़री कपड़े पहने, और नौकरों को सामान नीचे लाने तथा किराए की मोटर बुलाने के लिये हुक्म दिया। दस मिनट बाद वह मोटर में बैठ रेलवे-स्टेशन की तरफ़ रवाना हो गए।

---

(२३)

वे उठते भी हैं अवश्य, जो गिरते हैं;
दुर्दिन के बाद सुदिन सबके फिरते हैं।

—रूपनारायण पांडेय

लखनऊ-स्टेशन पर रेल के पहुँचते ही यह अपने डिब्बे की खिड़की से बाहर सिर निकाल लोगों की भीड़ देखने लगे। कोई क़ुली से सामान उठवाकर गाड़ी की तरफ़ जल्दी-जल्दी जा रहा था, और कह रहा था कि ऐसे डिब्बे में सामान रक्खो, जो ख़ाली हो। कोई दूर से ही ताक लगाकर अपने आनेवाले मित्र या संबंधी को रेल में ढूँढ़ रहा था। रेल ठहर गई, यह नीचे उतरे, और अपने नौकर से, जो नौकरों-वाले डिब्बे में बैठा था, उतरकर सामान उतारने को कहा। इतने में डॉक्टर अयोध्यानाथ भी इधर आ गए, और अपने पुराने मित्र रघुवीर-

सिंह को देख गले मिले। डॉक्टर साहब अपनी मोटर लाए थे, इसलिये नौकर ने क़ुली से सामान उठवा, उनके पीछे-पीछे जा मोटर में रखवा दिया, और सब लोग मोटर पर बैठकर डॉक्टर साहब के घर रवाना हो गए।

रघुवीरसिंह ने रास्ते में अपने मित्र डॉक्टर साहब से कहा—"अपने घर के बजाय यदि मेरे ठहरने का प्रबंध आप किसी होटल में कर देते, तो मुझे अपने काम में अधिक सुविधा होती।"

डॉक्टर साहब ने मुँह बनाकर उत्तर दिया—"जी हाँ, जिनकी आदत सराय में ठहरने की हो गई हो, उन्हें घर ठहरना कब पसंद आता है? पर भाई, आजकल के होटलों में पिछले वक़्त की सराय के माफ़िक़ भठियारिनें नहीं मिलतीं, और न यहाँ के होटलों में विलायत के होटलों की तरह मिस ही मिलती हैं। पर यह तो बताओ, तुम्हारा ऐसा कौन-सा काम है, जिसके लिये होटल में घर से ज़्यादा सुविधा मिलेगी?"

रघुवीरसिंह समझ गए कि हमारे होटल में ठहरने के प्रस्ताव से मित्र का दिल ज़रा दुख-सा गया है। बस, इन्होंने भी व्यंग्य में उसी तरह का जवाब दिया—"तुम्हें मालूम है, मैं जासूस हूँ। तुम्हारी मेहमानदारी और बढ़िया भोजन से मुझे आराम करने और सुख से सोने की सूझेगी, या दौड़-धूप करके अपना काम करने की? ख़ैर, यह सब देखा जायगा। पहले यह बताओ, तुम और तुम्हारी गृहस्थी सब मज़े में हैं, और कारोबार सब ठीक-ठीक चल रहा है?"

डॉक्टर अयोध्यानाथ ने कहा—"सब परमेश्वर की कृपा से कुशल है। काम-काज के बारे में तुम ख़ुद चलकर देख लोगे कि कैसा चलता है।"

ये बातें करते-करते डॉक्टर साहब का घर आ गया, और दरवाज़े पर मोटर ठहर गई। डॉक्टर साहब ने अपने नौकरों से सामान उतर-

बाया, और जो कमरा इनके लिये नियत किया था, उसमें ले जाने को कहा। और, और इनसे भी स्नान आदि से निबटने की प्रार्थना कर कहा—" आप तैयार हो लें, फिर बातें होंगी।"

रघुवीरसिंह जब कपड़े बदलकर कमरे में पहुँचे, तब मालूम हुआ, डॉक्टर साहब एक रोगी देखने गए हैं, और ज़रा देर में आते होंगे।

इन्होंने चल-फिरकर जो कुछ देखा, और डॉक्टर साहब के सहायकों से जो हालात मालूम किए, उनसे इन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। रघुवीरसिंह ने समझा था, डॉक्टर साहब पहले की तरह ही रुपया पैदा करने और चैन से जीवन बिताने में मग्न होंगे, पर उन्होंने देखा, यहाँ तो सारा रंग ही बदला हुआ है। दवाख़ाने के बाहर साइनबोर्ड लगा था, जिस पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा हुआ था 'अयोध्यानाथ का मुफ़्ती दवाख़ाना', और मकान ही के पास एक बड़ा-सा ज़च्चाख़ाना था। दर्याफ़्त करने पर मालूम हुआ, इसे भी डॉक्टर साहब ने बनवाया है, और यहाँ भी सब काम मुफ़्त होता है। इन्होंने यह भी मालूम कर लिया कि डॉक्टर साहब बाहर जाने पर केवल बड़े आदमियों से ही फ़ीस लेते हैं, ग़रीबों का इलाज बिना फ़ीस करते हैं। बड़े आदमियों से फ़ीस से जो रुपया मिलता है, वह एक फ़ंड में जमा होता है, और फ़ंड से ग़रीब स्त्रियों के लिये भोजन आदि का प्रबंध होता है। डॉक्टर साहब अपने पास के बचे-बचाए धन से अपनी गृहस्थी का ख़र्च चलाते हैं। उनका जीवन अब एक गृहस्थ साधु के समान है। रघुवीरसिंह डॉक्टर साहब के इस परिवर्तन पर एकदम मुग्ध हो गए, और प्रसन्न-चित्त हो भगवान् को धन्यवाद दिया।

डॉक्टर साहब जब वापस आए, तो इनके चेहरे से ही ताड़ गए कि इन्होंने सब बातें जान लीं। फिर इनसे कहा—"आपने देख लिया कि काम-काज सब ठीक चल रहा है ?"

रघुवीरसिंह ने कहा—"तुम्हें धन्य है, जो इस प्रकार जनता की

सेवा में अपना तन-मन-धन सब अर्पण कर दिया !"

इसके बाद उन्होंने रघुवीरसिंह से उनका काम और लखनऊ आने का कारण पूछा। इस पर उन दोनो में धीरे-धीरे बड़ी देर तक बातें होती रहीं।

---

(२४)

ऐ दर्द ! बहुत किया परेखा हमने ;
देखा तो अजब यहाँ का लेखा हमने।

—दर्द

डॉक्टर साहब रघुवीरसिंह की बातें सुन चुप हो गए, और कुछ सोचने लगे। थोड़ी देर बाद उनका चेहरा उतर गया, और आँखों में आँसू छलक आए।

रघुवीरसिंह जासूस थे। समझ गए, यहाँ कुछ पानी-सा मरता नज़र आता है। इनके पिछले ढंगों को याद कर सोचने लगे, कहीं इन्हीं महात्मा ने तो उसका सर्वनाश नहीं कर डाला। पूछा—"क्यों, तुम्हें इस मामले में कुछ वाक़फ़ियत है क्या ?"

डॉक्टर साहब ने राजा साहब के गाँव की उस लड़की को भगा लाने और उसके आत्महत्या कर लेने का सारा हाल कह सुनाया। यह इस कहानी को सुन, दाँतों-तले उँगली दबा कुछ सोचने लगे। सबसे पहला ख़याल तो यह हुआ कि ललिताकुँवरि गाँव में जाकर क्यों रहने लगी, और उस लड़की से इस मामले का संबंध ही क्या हो सकता है। फिर सोचा, यह न सही, एक दूसरी बात की खोज का ही अवसर मिलेगा।

तब इन्होंने डॉक्टर साहब से कहा—"तेजसिंह के ख़ानदान में

कोई जीवित है या नहीं, आपको इसका भी पता है? इस लड़की के बारे में फिर बातचीत करेंगे।"

डॉक्टर साहब ने कहा—"उनके दोनो पुत्र, ऊधोसिंह और माधव-सिंह, यहाँ का सारा कारोबार उठाकर विलायत चले गए, इसके सिवा हम कुछ नहीं जानते। और, मेरा पक्का ख़याल है कि और किसी को इस बारे में ज़्यादा हाल मालूम नहीं, क्योंकि जाने के बाद उनकी कोई ख़बर नहीं मिली।"

रघुवीरसिंह ने जेब से वह चिट्ठी, जो सॉलिसिटर ने दी थी, निकाली, और एक एक शब्द बड़े ग़ौर से पढ़ा। पढ़ने के बाद डॉक्टर साहब को भी बतला दिया।

डॉक्टर साहब ने कहा—"इसका तो पता चलना कठिन है। पर न-जाने क्यों इस मामले को सुन उस लड़की की सूरत और अवस्था का ध्यान ज़रूर आ जाता है। लेकिन अक़्ल और क़यास यही कहते हैं कि उससे और इस मामले से किसी तरह का संबंध नहीं हो सकता।"

रघुवीरसिंह कुछ सोचने लगे, और बड़ी देर बाद बोले—"अच्छा, इस लड़की की आत्महत्या की पूरी जाँच हो चुकी, और यह साबित हो चुका कि वह मर गई। मेरे मामले को अभी रहने दो, इसकी बात पहले कर लें।"

डॉक्टर साहब ने तकिए के नीचे निकली चिट्ठी का हाल कह डाला, और कहा कि राजा साहब और वह ख़ुद उस मामले में फँसे हुए थे, और पुलिस में बात जाने से दोनो पर आफ़त आने का डर था, इस-लिये और जाँच पड़ताल नहीं की गई।

रघुवीरसिंह ने कहा—"मुझे वह चिट्ठी देखने को मिल सकती है? तुमने एक और काम मेरे लिये खड़ा कर दिया। पर अब इसकी तह में गए बिना मुझे चैन नहीं पड़ सकती।"

तब यह निश्चय हुआ कि भोजन से निबटकर दोनो राजा साहब से मिलने चलेंगे, और वह चिट्ठी दिखाने को राज़ी होते हैं या नहीं, यह मालूम करेंगे।

---

(२५)

हवस जीने की है यों उम्र के बेकार कटने में ;
जो हमसे ज़िंदगी का हक़ अदा होता, तो क्या होता।

—चकबस्त

हम ऊपर कह चुके हैं कि राजा साहब उस रात सुख की नींद सोए। सुबह उठकर जब वह चाय पी चुके तो सबसे पहले अपने मित्र वकील साहब को बुला अपने क़र्ज़ की बेबाक़ी की बातचीत करनी चाही। नौकर से वकील साहब को बुला लाने को कहा। थोड़ी देर में वकील साहब आ गए। उन्हें स्वप्न में भी यह ख़याल न था कि राजा साहब उन्हें अपने आप बुलाकर क़र्ज़ की बात करेंगे, क्योंकि जब-जब वकील साहब ने उनसे यह मामला छेड़ा, तब-तब टाल-मटोल हो जाती थी। जब राजा साहब ने पूछा कि कुल क़र्ज़ की कितनी रक़म अब तक हो गई है, तो इन्हें बड़ा अचंभा हुआ। इन्होंने सोचा, कहीं कोई लाटरी तो नहीं आ गई। फिर सोचा, अगर इन्हें लाटरी का भी रुपया मिल जाता, तो उसे भी अपने चालू ख़र्च में लाने की सूझती। यह क़र्ज़ का ख़याल कैसे आया ? वकील साहब ने इन्हें अपनी याद से रक़म बतला दी, और साथ ही यह कहा कि काग़ज़ात से कुछ कम-बेश हो, तो हो सकती है। अब राजा साहब ने इनसे अपनी सारी दास्तान और अपनी कोठी वग़ैरा बेचकर, जिस तरह बने, कुल क़र्ज़ अदा करने की बात कही। तब तो वकील साहब अचंभे में आ गए, और प्रसन्न-मुख हो

कहा—"राजा साहब, आपने ख़ूब सोचा! भगवान् ने सहायक हो आपके घराने की इज़्ज़त और नाम बचा लिया।"

फिर इनमें काम की बात-चीत हुई, और वकील साहब ने कहा—"आप अपने सारे क़र्ज़ों की सूची हमें दें। जैसे भी बनेगा, सबको निबटाने की फ़िक्र करेंगे।"

इन्होंने झट दफ़्तर से वह किताब, जिसमें यह सब लिखा था, और एक काग़ज़ का बंडल ला इनके हवाले कर दिया।

किताब पढ़ वकील साहब ने अपना माथा ठोका, और कहा—"राजा साहब, आप बहुत-से धूर्तों के फँदे में फँसे। सच पूछो, तो इन सब लोगों ने आपको लूट लिया। ख़ैर, अब आप चिंता न कीजिए, मैं इन सबसे निबट लूँगा। सीधी उँगली कब घी निकलता है? इन्हें डरा-धमकाकर काम लूँगा, और न मानेंगे, तो क़ानून की शरण लूँगा। अब आप किसी बात से न डरें। भगवान् आपकी यह प्रतिज्ञा पूरी करें, यही मेरी प्रार्थना है।"

यह कहकर उन्होंने, कचहरी का समय हो जाने से, बिदा ली, और सब काग़ज़ात अपने साथ लेते गए।

---

(२६)

नाशाद रहे, नाकाम रहे, तक़दीर ही अपनी फूट गई;
जिस शाख़ पै हमने हाथ धरा, वह शाख़ वहीं से टूट गई।
अब चैन कहाँ, आराम कहाँ, उम्मीद कहाँ, अरमान कहाँ;
आई थी अलम की फ़ौज गराँ, वह दिल की बस्ती लूट गई।

—चकबस्त

रघुबीरसिंह को लिए डॉक्टर साहब राजा साहब से मिलने आ पहुँचे। डॉक्टर साहब ने उनका परिचय दिया, और यह बतलाया कि

लड़की के बारे में सब हाल इनसे कह दिया है और फिर उस चिट्ठी को निकालकर रघुवीरसिंह को दिखाने को कहा, तो राजा साहब की सूरत उतर गई! उन्होंने सोचा, लो, अब फिर बला सिर पर आई मालूम होती है। मैं तो समझता था, पिछली बात खत्म हुई, पर मालूम होता है, पाप का फल दिए बिना परमेश्वर मेरा छुटकारा नहीं करेंगे। फिर मन-ही-मन परमेश्वर का ध्यान किया—"हे जगदीश्वर! आपने बड़े-बड़े पापियों को तार दिया है। मैं आपकी शरण हूँ, अब मेरी रक्षा करो।"

रघुवीरसिंह राजा साहब के चहरे के उतार-चढ़ाव से उनके मन का हाल ताड़ गए। बड़े नम्र भाव से राजा साहब से कहा—"राजा साहब, आप डरिए नहीं, डॉक्टर साहब मेरे परम मित्र और स्नेही हैं। जब वह भी इस मामले में शामिल हैं, तो क्या आप यह समझते हैं कि मैं आपका फ़ज़ीता करूँगा। नहीं, मैं तो आप लोगों के घर का सा आदमी हूँ, मैं सरकारी नौकर नहीं हूँ। मुझे तो उलझे हुए मामलों को सुलझा कर अपने देश और भाइयों का भला करने में खुशी होती है। मैं तो एक और मामले की खोज करने आया था। वकील साहब से जब यह सुना, तो मुझे इसमें बड़ी दिलचस्पी हो गई, और इसीलिये अगर हो सके, तो असल भेद मालूम करने की उत्कंठा है।"

राजा साहब ने कहा—"जनाब, मुझे पूरा भरोसा है, आप मेरी सहायता करेंगे। पर यह मामला तो ख़त्म हो चुका, मेरे पाप-कर्मों की वह लड़की शिकार बन चुकी। अब इसकी चर्चा करने में क्या धरा है!" यह कहते-कहते उनकी आँखों में आँसू भर आए, और वह रोकर कहने लगे—"यदि कोई उस वीर कन्या, सती देवी, के मरने की बात असत्य साबित करदे, और मैं उसके एक बार फिर दर्शन कर सकूँ, तो अपनी सारी संपत्ति, अपना सारा जीवन उसके चरणों पर निछावर करने को तैयार हूँ, पर ऐसा हो ही कैसे सकता है? उसने तो आत्म-हत्या करके सदा के लिये मेरे हृदय पर एक दाग़ लगा दिया। मुझे

जब उसकी सूरत याद आती है, तो सिवा अपने आपको धिक्कारने और मन-ही-मन में उसे नमस्कार कर लेने के और कुछ नहीं सूझता।" फिर एक संदूक से वह चिट्ठी निकाल रघुवीरसिंह के हवाले की।

रघुवीरसिंह ने बड़े ग़ौर से वह काग़ज़ आद्योपांत पढ़ा, और उसकी लिखावट को बड़े ग़ौर से देखा। अब उनका दिल बजाय दुखित होने के उछलता-सा मालूम हुआ। उन्होंने सिर झुकाए अपने जासूसी ज्ञान से उसकी छानबीन प्रारंभ की। उन्होंने देखा, चिट्ठी बड़ी सुंदर, बना-बनाकर और सँभालकर लिखी हुई थी, जिससे प्रतीत होता था कि लिखनेवाले का हाथ दृढ़ और अचल था। जो कोई आत्महत्या करने-वाला होता है, उसमें इतनी गंभीरता और दृढ़ता कहाँ रह सकती है? उन्होंने इस तरह के लेख पहले कई बार देखे थे। सब में अक्षर घसीटे हुए थे, जिससे किसी-न-किसी तरह की जल्दी अथवा घबराहट मालूम पड़ती थी, पर इसमें वैसी कोई बात न थी।

यह काग़ज़ देखने और मन में कुछ विचार आने से इनके मुँह पर ज़रा प्रसन्नता-सी झलकती दिखाई पड़ी। डॉक्टर और राजा साहब, दोनों इनके चेहरे को देख अच-कचा-से गए, और पूछ बैठे—"क्यों साहब, आपको इस आत्महत्या में कुछ संदेह मालूम होता है।"

इस पर रघुवीरसिंह ने गंभीरता से उत्तर दिया—"मैं अभी कुछ नहीं कह सकता। पर मुझे संदेह क्या, पूरा-पूरा शुबहा मालूम पड़ता है।"

जैसे किसी बेहोश आदमी पर पानी छिड़कने से जान-सी आ जाती है, वैसी ही राजा साहब, और डॉक्टर साहब, दोनो ही इस उत्तर से फड़क उठे।

राजा साहब ने कहा—"भगवान् आपका संदेह सच्चा करें।"

तब रघुवीरसिंह ने राजा साहब से कहा—"मैं संध्या को वह जगह देखना चाहता हूँ, जहाँ यह घटना हुई, और साथ-साथ वहाँ के लोगों

से, जो इस मामले से परिचित हों, मिलकर बातचीत करने की इजाज़त चाहता हूँ ।"

राजा साहब ने कहा—"ज़रूर । मैं स्वयं आपको वहाँ ले चलूँगा। इस भेद में सिवा मेरे, इन डॉक्टर साहब और एक ख़ाँ साहब के और कोई सम्मिलित नहीं। वहाँ के नौकरों में भी अब सिवा बाग़बान और एक पहरेदार के और कोई नहीं रहा। एक स्त्री को, जिसे डॉक्टर साहब ने सेवा-सुश्रूषा के लिये नियत किया था, उसी वक़्त रुपया दे रुख़सत कर दिया गया था।"

रघुवीरसिंह ने कहा—"ख़ैर, अब जो कुछ बाक़ी हैं, उन्हीं से बातचीत करके जो मतलब निकलेगा, निकालने का प्रयत्न करेंगे। अब आप खाना खाइए,। मैं संध्या के चार बजे डॉक्टर साहब के साथ हाज़िर हूँगा।" फिर डॉक्टर साहब की तरफ़ मुड़कर कहा—"क्यों डॉक्टर साहब, यह समय आपको सुविधा का होगा क्या?"

डॉक्टर साहब ने उत्तर दिया—"मै तो रात-दिन, जब आप चाहें, आपकी सेवा में ही हूँ। और, इस काम के लिये तो मुझे अपने सारे काम छोड़ महीने-भर भी रात-दिन लगना पड़े, तो तैयार हूँ।"

दोनो ने खड़े हो राजा साहब से बिदा ली। वे उठने भी न पाए थे कि नौकर ने आकर कहा—"हुज़ूर ख़ाँ साहब आए हैं, और हुज़ूर से एक मिनट को मिलना चाहते हैं।"

राजा साहब ने कहा—"बुला लाओ।" और इन दोनो से भी ज़रा ठहरने की प्रार्थना की।

ख़ाँ साहब ने आकर, झुककर सलाम किया। फिर वहाँ डॉक्टर साहब और एक नए शख़्स को देखकर मन में सोचा, कहीं कुछ फिर और आफ़त तो नहीं आनेवाली है।

इतने ही में राजा साहब ने रघुवीरसिंह से ख़ाँ साहब की ओर संकेत करके कहा—"यह ख़ाँ साहब भी हमारे उस मामले में शामिल थे।"

यह सुनकर ख़ाँ साहब के देवता कूच कर गए। सोचा, कहीं राजा साहब पुलिस से मिलकर मुख़बिर तो नहीं बन गए। और, जब देखा कि रघुवीरसिंह हमें ग़ौर से देख रहे हैं, तब तो मुँह उतर गया, और दिल में कहने लगे—"या ख़ुदा! बंदों की आबरू तेरे ही हाथ है!" रघुवीरसिंह ने कहा—"ख़ाँ साहब भी अगर शाम को तकलीफ़ करें, तो अच्छा हो।"

अब इनकी जान में जान आई। इन्होंने सोचा, अगर यह पुलिस के आदमी होते, तो सब भेद मालूम होने पर ऐसी सज्जनता से क्यों व्यवहार करते; फ़ौरन् हथकड़ी डालकर गिरफ़्तार कर लेते। बस, अब डॉक्टर साहब ने रघुवीरसिंह को साथ ले वहाँ से प्रस्थान किया, और अपने घर चले आए।

---

(२७)

मेरे मौला, मेरी बिगड़ी के बनानेवाले!
तू ही तक़दीर अब इस खस्तए बेकस की उलट।

चकबस्त

❀ ❀ ❀

हर वक़्त ज़माने का सितम सहते हैं;
हासिद जो बुरा कहते हैं, चुप रहते हैं।
जो नेक हैं, वह बंदों को भी कहते हैं नेक;
जो बद हैं, वह नेकों को बुरा कहते हैं।

—अनीस

ख़ाँ साहब को राजा साहब के यहाँ दिन में आते जब नवलसिंह ने देखा, तो वह भी उनके पीछे-पीछे ऊपर चढ़ आए। राजा साहब के यहाँ नौकर हो जाने पर अब इनकी रोक-टोक तो थी ही नहीं।

बुड्ढे की आँखें रात-भर रोते-रोते सूज आई थीं। ज्यों-त्यों करके देवीसिंह को तो मजूरी पर भेजा, और यह प्रत्येक क्षण परमेश्वर का ध्यान कर यही प्रार्थना करते थे कि "भगवान्, मेरी लल्लो मरी न हो। एक बार मुझसे फिर मिल जाय।"

दीनदयालु भगवान् सदा संकट के समय दीन-असहायों की पुकार सुन लिया करते हैं, इसलिये बेचारे बुड्ढे नवलसिंह की यह प्रार्थना भी उनके कानों तक पहुँच गई।

बुड्ढा इसी ग़रज़ से ख़ाँ साहब के पीछे-पीछे चला आया था कि इनकी और राजा साहब की बातें सुन सके। कहीं शायद राजा साहब और ख़ाँ साहब ने ढोंग रचकर ही सब बातें न की हों, और ललिता को कहीं छिपा रक्खा हो।

* * *

रघुवीरसिंह और डॉक्टर साहब के चले जाने के बाद राजा साहब ने ख़ाँ साहब से बैठने को कहा, और उन लोगों से जो बातचीत हुई थी, सब ज्यों-की-त्यों कह सुनाई।

ख़ाँ साहब हाल सुनकर कह उठे—"ख़ुदावंद करीम इनकी मदद करें।"

फिर राजा साहब ने कहा—"मैंने तुम्हें जागीर पर भेजना तय किया था, और आज ही हुक्म भी लिखकर दे देना चाहता था, जिस से तुम फ़ौरन जाकर काम करने लगो। पर अब तुम्हारा यहाँ ठहरना ज़रूरी है, इसलिये तुम आज ही से मेरे यहाँ कारिंदे की जगह मुक़र्रर हुए। इस काम से निबटकर, तुम अपनी जगह जाकर काम करने लगना। मैं तुम्हारा आज्ञा-पत्र तैयार रक्खूँगा।"

ख़ाँ साहब ने कहा—"हुज़ूर, आपकी मेहरबानी से पेट तो भर ही जायगा, पर अगर ये लोग उस लड़की के ज़िंदा होने का पता लगा लें, तो मैं भी यही चाहता हूँ कि उसके पैर पकड़ एक बार उसकी ज़बान से माफ़ी हासिल कर लूँ। तभी मेरे दिल में चैन आवेगी।"

बुड्ढे मेहते जी ने भी ये सब बातें चुपके-से, छिपे हुए, बाहर से सुन लीं। इनका सारा रंज काफ़ूर हो गया। आँखों में ज्योति-सी आ गई, और बदन में जान-सी। मन-ही-मन कहने लगे—भगवान्, मुझ ग़रीब की पुकार तुमने सुन ली, अब जल्द मेरी मँझधार में डूबती हुई नौका पार लगाओ। वह नीचे आ नौकरों में फिर बैठ गए। नौकर लोग इसका मतलब कुछ नहीं समझ सके कि ज़रा देर पहले जहाँ यह मरा हुआ, बेजान-सा पड़ा था, अब इस तरह ख़ुशी-ख़ुशी कैसे फिरने लगा!

ख़ाँ साहब नीचे उतर घर जाने लगे। मेहते ने सोचा, अगर मैं भी जहाँ ये लोग खोज करने जा रहे हैं, जा सकूँ, तो कैसा अच्छा हो। एक तो मुझे जो बातें होंगी, उनका पता चल जायगा, और यहाँ पड़े-पड़े, क्या होता है, उसकी चिन्ता से बचूँगा। दूसरे, अगर कोई पता न चला, और यही निश्चय रहा कि ललिता मर ही गई, तो कम-से-कम जहाँ वह मरी है, वहाँ जाकर अपने जले हृदय से दो आँसू तो बहा आऊँगा।

इन्होंने जल्दी-जल्दी जा बाहर के फाटक पर ही ख़ाँ साहब को जा पकड़ा, और हाथ जोड़ बोले—"ख़ाँ साहब, मैंने सब बातें सुन लीं। मेरी हाथ जोड़ यह अरज है कि उस जगह मुझे भी ले चलो।"

ख़ाँ साहब इनके हृदय की वेदना समझ गए। उन्होंने सोचा, जब हम ग़ैरों को इतना दुःख और पश्चात्ताप हो रहा है, तो यह तो उसका बाप है, इसे कितना दुःख होगा! उन्हों ने इनकी हिम्मत और धैर्य को भी सराहा कि किस तरह मन रोके दीनता से प्रार्थना करते हैं।

ख़ाँ साहब ने कहा—"मेहते जी, ठीक है, तुम वहाँ ज़रूर चलना। मैं तुम्हें अपने साथ ताँगे में ले चलूँगा। तुम तीन बजे तैयार रहना। पर देखो, दूर से छिपे-छिपे सब बातें देखना-सुनना; सामने आने पर कहीं राजा साहब नाराज़ न हो जायँ, क्योंकि उन्हें तो यह मालूम ही नहीं कि तुम ललिता के बाप हो। हम उनसे यह ज़िक्र ज़रूर करना

चाहते हैं, पर अभी नहीं। न-मालूम वह डर या किसी और बात से तुम्हें नौकरी से निकाल दें, तो और मुश्किल होगी।"

इस पर बुड्ढे ने कहा—"नहीं ख़ाँ साहब, सो तो मैंने राजा साहब को ख़ूब समझ लिया। अब वह बड़े दयावान् हो गए हैं। पर नहीं, अभी मैं भी ज़ाहिर होना नहीं चाहता। अगर लल्लो जीती मिल गई, तो सब बात अपने आप खुल जायगी, इसलिये मेरे ज़ाहिर होने से फ़ायदा ही क्या। मुझे तुम ले चलना। मैं सब बातें छिपकर सुन लूँगा। किसी के सामने नहीं होऊँगा।"

तत्पश्चात् ख़ाँ साहब अपने घर चल दिए, और नवलसिंह आकर अपनी नौकरी पर हाज़िर हो गए।

---

(२८)

सपने की-सी ये बातें जब स्मरण हमें हो आती हैं;
थर-थर गात कँपाय, हृदै बिचलाय, नैन जल छाती हैं।

—मिश्रबंधु

ख़ाँ साहब तीन बजे के क़रीब ताँगे पर सवार हो महल के फाटक तक आए। नवलसिंह उनकी राह ही में बैठे थे। बस, उन्हें ताँगे पर चढ़ा वह 'जादू-घर' की तरफ़ रवाना हो गए।

संध्या के ठीक चार बजे रघुवीरसिंह और डॉक्टर अयोध्या नाथ मोटर में राजा साहब के महल पर आ पहुँचे।

राजा साहब इंतज़ार में तैयार बैठे थे। उठकर दोनो का स्वागत किया, और कहा—"अगर देर न होती हो, तो एक-एक प्याला चाय पी लीजिए।"

दोनो ने स्वीकृति दी। ड्राइंग-रूम में ही चाह आ गई। ज़रा-ज़रा सा नाश्ता कर तीनो ने चाय पी, और क़रीब $4\frac{1}{2}$ बजे सब राजा साहब की

मोटर में सवार हो 'जादू-घर' चल दिए। डॉक्टर साहब के ड्राइवर से राजा साहब बोले—"मोटर वापस ले जाओ, मैं डॉक्टर साहब और उनके मेहमान को घर पहुँचा दूँगा।"

पर रघुवीरसिंह ने रोक कर कहा—"इस कृपा के लिये धन्यवाद ! पर मोटर पीछे-पीछे आने दीजिए, शायद उसकी ज़रूरत पड़े, और मुझे उसे कहीं और ले जाना पड़े।"

दूसरी मोटर भी इनके पीछे चली।

ये सब वहाँ पहुँच, गाड़ी से उतर भीतर घुसे। पहरेदार ने झुककर सलाम किया, और फिर सदर दरवाज़ा खोल दिया। बाग़वान ने भी मालिक की मोटर आते देख झुककर हाथ जोड़े, और फिर बाग़ में काम करने चला गया। खाँ साहब पहले ही से आकर इंतज़ार कर रहे थे। मेहते जी भी कहीं आड़ से यह सब देख रहे थे।

तीनों उसी कमरे में घुसे, जिसमें ललिता क़ैद रक्खी गई थी, या यों कहिए, बीमार होकर पड़ी रही थी। खाँ साहब भी इनके पीछे हो लिए। उसमें घुसते ही राजा, डॉक्टर और खाँ साहब का बदन थर्रा कर काँप उठा।

राजा साहब ने कहा—"इसी कमरे में वह लड़की रही थी, और इसी पलँग के तकिए के नीचे वह लिखा हुआ पर्चा निकला था।"

ये सब तो जाकर बड़े कमरे में बैठ गए, और रघुवीरसिंह ने सब कमरों का अच्छी तरह निरीक्षण किया। एक-एक कमरे में जा हर एक चीज़ अच्छी तरह देखी। फिर बाहर गए, और सब दरवाज़े घूम-फिरकर यह देख-भाल करने के बाद वह फिर बड़े कमरे में आ इस मंडली में बैठ गए। सबसे पहले खाँ साहब से कहा—"आप सब बातें अपनी याद के मुआफ़िक़ शुरू से आख़िर तक कह सुनाइए। बुरी या भली कोई बात छिपाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि मैं आप ही का आदमी हूँ।"

खाँ साहब ने शुरू से, जब वह नवाब सआदतअली के यहाँ नौकर हुए थे, सब हाल—गाँव में जाना, देवीसिंह को पीटना, लड़की को

देखना, नवाब साहब से आकर सब समाचार कहना, और वहाँ से निकलने के बाद राजा साहब से मिलना, फिर उस लड़की को उड़ा लाना, यहाँ उसे रखना, यहाँ उस से जो बातचीत हुई, वह सब, फिर उसका गुम हो जाना आदि—ज्यों-का-त्यों कह, सुनाया सिर्फ़ बुड्ढे मेहते से मिलने और उनके यहाँ मौजूद होने की बात इन्हों ने छिपाई।

ख़ाँ साहब की कैफ़ियत सुनने के बाद राजा साहब से भी सब बातें कहने को कहा गया। उन्होंने भी सारी बातें जैसी-की-तैसी कह सुनाई। डॉक्टर साहब ने भी लड़की के इलाज का और जिस स्त्री को उन्होंने नियत किया था, उसका सब हाल कह सुनाया। और, वह लिखा हुआ पर्चा भी उन्हीं की नज़र में सबसे पहले पड़ा था, और उन्होंने लेजाकर राजा साहब को दे दिया था, यह सब कह डाला।

रघुवीरसिंह इन तीनों के बयानात चुपचाप, आँखें बंद किए सुनते गए, और बीच-बीच में जहाँ कुछ समझना चाहा, सवाल करके मतलब साफ़ करते गए। यह सब सुनने के बाद उन्होंने थोड़ी देर वैसे ही आँखें बंद रक्खीं, जैसे किसी पहेली पर कुछ विचार करते हों। फिर जेब से सिगार निकाल, दियासलाई से जला पीने लगे, और एक नोट-बुक तथा पैंसिल जेब से निकाल डॉक्टर साहब से पूछा—"आप उस नौकरानी का नाम और पता बतला सकते हैं?"

डॉक्टर साहब ने कहा—"मैंने जब उसे नौकर रक्खा था, तब ज़रूर उसके घर का पता जानता था, पर अभी, कुछ रोज़ हुए, ज़च्चाख़ाने में दाई की ज़रूरत होने पर, उसे नौकरी के लिये बुलाने की ग़रज से मैंने तलाश कराया था, तो मालूम हुआ, वह घर छोड़ चली गई। पड़ोसियों को भी उसका पता नहीं। मालूम होता है, वह इस शहर को ही छोड़कर चल दी है।"

रघुवीरसिंह ने पॉकेट-बुक और पेंसिल फिर जेब में डाल ली, और कुछ भौंहे सिकोड़, माथे पर बल डाल सोचने लगे। उन्होंने मन-ही-

मन सोचा, जो नौकरानी दाई बरसों यहाँ रहती थी, उसे इस घटना के बाद फ़ौरन ही शहर छोड़कर चले जाने की क्यों सूझी ? कोई ख़ून तो हुआ ही न था, जो उसे पकड़े जाने या पुलिस की तरफ़ से किसी प्रकार का भय होता। कोई अगर अपने आप आत्महत्या कर ले, तो उसकी ख़बरदारी करनेवाले को कौन-सी बात का डर हो सकता है ? फिर डॉक्टर साहब ने भी कहा है, वह बड़ी होशियार और वाक़िफ़कार औरत थी। ऐसी स्त्री डर की वजह से शहर छोड़ जाय, ऐसा हो नहीं सकता। इसमें ज़रूर कोई भेद है। आत्महत्या की बात झूठी निकल जाय, और फिर उससे पूछ-ताछ हो, इसी डर से उसका शहर छोड़ना संभव हो सकता है। लिहाज़ा यह सबसे पहला सुबूत मेरे संदेह को सही बनानेवाला मालूम होता है। मगर अभी तो हमें पूरी ज़ंजीर बनानी है। इसे, तो ज़ंजीर की एक कड़ी समझना चाहिये।

बस, इन्होंने मुस्किराते हुए कहा—"ठीक है, उसका पता चल जाता, और वह मिल जाती, तो इस मामले के सुलझने में ज़रा सहूलियत होती। मगर जब वह शहर ही छोड़ गई, तो फिर जाने दो, उसके बिना ही काम चल जायगा। ऐसा मालूम होता है।"

सब लोग दंग रह गए कि यह कैसा अजीब शख़्स है, जो किसी भी बात से ज़रा भी निराश होते नज़र नहीं आता।"

---

(२९)

घेरे रहैं गाउँवाले, जो मदति देइँ औ राखैं प्रीति ;
उनहिन का हम उठि गरियाइँ, अति हमार भई उल्टी रीति।

—महावीर प्रसाद द्विवेदी

रघुवीरसिंह ने उठकर राजा साहब से कहा—"ज़रा आप चलकर

मुझे यह तो बता दीजिए कि इन दरवाज़ों के बंद रहने का इंतज़ाम कैसे होता था ।"

राजा साहब ने सबसे पहले सदर दरवाज़े पर जाकर कहा— "इस पर चार पहरेदार रहते थे, और वे बारी-बारी से सब दरवाज़ों के ताले देख आया करते थे ।" फिर दूसरे और तीसरे दरवाज़ों के पास ले गए, और कहा—"इनके ताले हमेशा बंद रहते हैं, और इनकी चाबी मेरे पास तिजोरी में रक्खी है ।" इनमें अब भी मज़बूत ताले पड़े थे, जो बंद थे । इसके बाद चौथे दरवाज़े पर, जो दक्षिण की ओर था, ले जाकर बोले—"इसकी ताली बाग़वान के पास रहती है । मगर उसे खोलने का कभी-कभी ही मौक़ा पड़ता है । जब मैं ख़ुफ़िया तौर पर आता हूँ, या बाग़वान को भीतर फूल-पत्ती लगाने का मौक़ा आता है, तभी यह दरवाज़ा मेरे हुक्म से खोला जाता है ।"

रघुवीरसिंह ने इस दरवाज़े और उसके ताले को बड़े ग़ौर से आँखें गड़ा-गड़ाकर देखा । फिर राजा साहब के साथ सदर दरवाज़े से आकर वह भी कमरे में बैठ गए । वहाँ डॉक्टर साहब और ख़ाँ साहब बड़ी उत्सुकता से इनका इंतज़ार कर रहे थे । इन्हें यों ही आता देख समझ गए कि अभी कुछ सुराग़ नहीं चला ।

एक-दो मिनट बैठने के बाद रघुवीरसिंह फिर उठे, और अन्दर की तरफ़ से उसी दक्षिण-दरवाज़े की तरफ़ गए । अब भीतर की तरफ़ से भी उन्होंने उस दरवाज़े को ग़ौर से देखा । फिर तीनों और दरवाज़ों को भीतर की तरफ़ से देखने गए । लौटकर फिर उसी दरवाज़े पर आए, और झुककर, कभी घुटने टेककर, बैठकर तथा कभी इधर-उधर देखकर मन-ही-मन बड़े ख़ुश हो कहने लगे—ज़ंजीर की दूसरी कड़ी भी मिल गई । सदर दरवाज़े के अलावा यह दरवाज़ा भी हाल ही में खोला गया मालूम पड़ता है । फिर कमरे में आकर और दक्षिण-दरवाज़े की ओर इशारा कर राजा साहब से पूछा—"आपने कब से इस दरवाज़े को नहीं खुलवाया ?"

राजा साहब ने ज़रा देर याद कर सोचते हुए कहा—"इसे खुल-वाए तो बड़ा अर्सा हुआ।"

इस पर उन्होंने फिर राजा साहब से कहा—"मैं बाग़ को भी ज़रा देख लूँ।"

सबने साथ चलने को कहा, मगर रघुवीरसिंह ने यह कहकर टाल दिया—"नहीं, आपके तकलीफ़ करने की कोई ज़रूरत नहीं। मैं ख़ुद ही जाकर देख लेता हूँ।" इन्होंने सदर दरवाज़े से बाहर निकल धीरे-धीरे बाग़ में टहलते हुए सब जगह का चक्कर मारा। बाग़ में नलों का पानी आ जाने से कुएँ और कोहर वग़ैरह की जगह का भी कोई पता न था। इन्होंने सारा बाग़ घूमकर उसका नक़्शा अपने ज़हन में खींच लिया। फिर दक्षिण-दरवाज़े के बाहर जो 'लता-भवन' था, वहाँ जाकर रुक गए, और उसमें घुस दरवाज़े की ओर देखा। फिर इधर-उधर देखा, और वहाँ से खड़े होकर बाहर के अहाते की तरफ़ देखने लगे। आगे बढ़े, और सारे अहाते का चक्कर लगाया, तथा बाहर फाटक तक चले गए। चलते-चलते और घूमते-फिरते इनकी मन-गढ़ंत जारी थी। इस तरह सारे बाग़ की गश्त लगा वह लौटकर फिर कमरे में आ गए।

राजा साहब ने पूछा—"कहिए, कुछ समझ में आया?"

इस पर रघुवीरसिंह बोले—"इतनी जल्दी।" फिर राजा साहब से कहा—"आप तो कहते थे, बाग़बान फूल-पत्ती के लिए यह दरवाज़ा खोला करता है। इतनी देर आपको यहाँ आए हो गई, यहाँ तो कोई फूल-पत्ती लेकर नहीं आया।"

राजा साहब उठे, और बाहर निकलकर बाग़बान को बुलाया। डाँटकर कहा—"क्योंजी, हम लोगों को इतनी देर आए हो गई, तुम्हें फूल-पत्ती लाने की नहीं सूझी? गुलदस्तों के लिये तो रही, एक तरफ़ तुमने हम लोगों को बटन तक भी लाकर नहीं दिए। आज यह क्या बात है?"

रघुवीरसिंह भी इन्हीं के पीछे-पीछे उठ गए थे। इन्होंने जो डाँट बाग़बान को दी, वह इन्होंने सुन ली। जवाब में बाग़बान क्या कहता है इसी पर उनके कान लगे थे, और इनकी आँखें बाग़बान की सूरत पर जमी थीं।

बाग़वान ने कुछ डरते-डरते, हाथ जोड़ उत्तर दिया—"महाराज, आप लोग गुप-चुप बातें करते थे, इससे मैं भीतर नहीं घुसा।"

राजा साहब ने कहा—"क्या और रोज़ हम अकेले ही बैठे रहते थे? क्या हमारी बातचीत के वक़्त तुम भीतर आकर फूल-पत्ते नहीं जमा जाया करते थे? फिर आज कौन-सी बात हुई?"

बाग़वान ने रघुवीरसिंह की तरफ़ देखा, और सिर झुकाकर रह गया। रघुवीरसिंह समझ गए, यह कहना चाहता है कि आज मैं यहाँ नया आया हूँ, इसलिये मुझे देख इसने भीतर नहीं आना चाहा। फिर सोचा, नए और पुराने से बाग़बान को क्या मतलब। उसके लिये तो सब एक-से हैं। जब हमेशा अंदर आया करता था, तो आज बाहर ही क्यों रहा? भीतर नहीं आया, इसमें अवश्य कुछ भेद है। फिर राजा साहब की तरफ़ मुड़कर बोले—"राजा साहब, बेचारा ग़रीब अनजान है। किसी वजह से डर गया होगा, इसलिये फूल-पत्ती नहीं लाया। इसे माफ़ कीजिए।" फिर कुछ गहरी नज़र से बाग़बान की ओर देखकर कहा—"अच्छा, जाओ, अब ले आओ।" बाग़बान की सूरत और आँखों से यह ताड़ गए कि इसके दिल में कुछ उधेड़-बुन हो रही है। राजा साहब तो भीतर कमरे में चले गए, बाग़बान बाग़ में फूल-पत्ती लेने चला गया, और यह चुपचाप लता-भवन के भीतर टहलने लगे।

(३०)

जो कि हँस-हँसके चबा लेते हैं लोहे का चना ;
है कठिन कुछ भी नहीं, जिन के है जी में यह ठना।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय

रघुवीरसिंह को ऐसा मालूम हुआ, जैसे लता-भवन में कोई खड़ा हो, और इन्हें आते देख सरक-सा गया हो। यह अनजान बन एक तरफ़ चले गए, मानो इन्हें कुछ संदेह ही नहीं हुआ, पर इन्होंने देख लिया कि एक नया-सा आदमी लता-भवन की तरफ़ चोर की तरह खड़ा है, किसी के आने की आहट पाता है, तो छिपने की कोशिश करता है। इन्होंने मन-ही-मन कहा—"कहीं जासूस के कामों की दूसरा जासूस तो ख़बर नहीं रख रहा है ? यह आँख बचा, दूसरी तरफ़ से ही इसके सामने आ पहुँचे। वह शख़्स सहम गया, और जैसे कोई भागने का रास्ता ढूँढ़ता हो, इधर-उधर देखने लगा।

रघुवीरसिंह ने डपटकर पूछा—"तुम कौन हो, जो इस तरह चोर की तरह खड़े हो ?"

बुड्ढे मेहते जी घबरा गए, उन्होंने मन-ही-मन कहा—"देखो, ख़ाँ साहब ने पहले ही कह दिया था कि किसी के सामने मत पड़ना ; पर मैं तो पूरा मूर्ख हूँ, मेरे दिल में ऐसी धुकधुकी लगी थी कि मैं दूर खड़ा नहीं रह सका। अब न जाने मेरी क्या गति होगी, और ख़ाँ साहब क्या कहेंगे !

इन्होंने हिम्मत कर, हाथ जोड़ कहा—"महाराज, मैं तो राजा साहब के महल का नौकर हूँ, यहाँ बाग़ में यों ही चला आया हूँ।"

रघुवीरसिंह का संदेह और दृढ़ हुआ। उन्हों ने कहा—"जब तुम महल में नौकरी करते हो, तो इतनी दूर, नौकरी छोड़ यहाँ बाग़ में, आने की कौन-सी ज़रूरत आ पड़ी ?"

इस पर मेहते जी ने कोई जवाब न दिया, और चुप खड़े रहे। रघुवीरसिंह ने फिर डपटकर कहा—"क्यों ? क्या तुम किसी के भेजे ख़ुफ़िया हो ?"

उन्होंने पाँव छूकर कहा—"महाराज, तिहारे पाँव की सौगंध, मैं खुफिया-बुफिया कोई नहीं। जा बात की तस्दीक़ चाहो, तो ख़ाँ साहब से करा दूँगा।"

फिर मन में अपने को धिक्कारने लगे कि मेरी ज़बान से ख़ाँ साहब का नाम क्यों निकल पड़ा।

रघुवीरसिंह इनके चेहरे को देख यह तो समझ गए कि यह कोई ख़ुफ़िया नहीं, पर इसके यहाँ आने में कोई-न-कोई भेद ज़रूर है।

इन्होंने बुड्ढे से कहा—"अच्छा, ठहरो। मैं ख़ाँ साहब से पूछता हूँ।"

अब तो बुड्ढे ने सोचा कि बस, नौकरी गई। फिर हिम्मत आई, और विचारा—"जा काम के लिये आए थे, सो तो हो ही गया, अब नौकरी ही में का धरो है। या तो लल्लो को ले घर ही चलेंगे, या वा के लिये जनम भर रो कर दिन काटेंगे।"

इतने ही में बाग़बान एक टोकरी में फूल-पत्ती लेकर इधर आता दिखाई दिया, और दक्षिण दरवाज़े की तरफ़ मुड़ा। ज्यों ही उसने ताला खोलना चाहा, पीछे रघुवीरसिंह को खड़े देखा, और उनके पास ही एक नए बुड्ढे गँवार को। बस, घबरा गया। हाथ से चाबी छूट ज़मीन पर गिर पड़ी।

किसी चीज़ के गिरने की आवाज़ से रघुवीरसिंह आगे बढ़े, और बुड्ढे बाग़बान को काँपते देख बोले—"क्यों, तुम काँपते क्यों हो ?" ताला खोल कर भीतर फूल-पत्ती जमा आओ। तुम तो हमेशा इस दरवाज़े को खोला करते होगे ?"

बाग़बान ने इनकी तरफ़ देखा, मानो इनकी आँखों से ताड़ना चाहता था कि कहीं इन्हें मेरे इस ताले को खोलने और ललिता को निकाल ले

जाने का हाल मालूम तो नहीं हो गया। फिर डरता-सा भीतर घुसा, और फूल-पत्ती लगाने लगा।

रघुवीरसिंह बाहर आ फिर उस बुड्ढे मेहते के पास गए, और कहने लगे—"चलो ख़ाँ साहब से कहलवा दो।"

पहले तो बुड्ढा झिझका, पर फिर इनके साथ हो लिया। सोचा, अब मेरा जितना बिगाड़ हो चुका, उससे और ज़्यादा क्या होगा ? यह उसे लिए भीतर कमरे में घुस आए। मेहते को देखते ही ख़ाँ साहब की सूरत उतर गई।

राजा साहब पूछ बैठे – "क्यों, तुम यहाँ कैसे आए ?"

मन में सोचा, महल से कुछ बुरी-भली ख़बर लेकर तो नहीं आया !

ख़ाँ साहब ने मन-ही-मन निश्चय किया कि शायद इस बात को राजा साहब से छिपाकर भी मैंने पाप किया। खड़े हो सब हाल साफ़-साफ़ कह सुनाया। इन्होंने तो समझा था कि राजा साहब नाराज़ होंगे, पर वहाँ बात उलटी हुई।

राजा साहब ने जब यह सुना कि वह उस लड़की का बाप है, तो उसे बड़ी सांत्वना दी, और कहा—"पहले मुझे मालूम नहीं पड़ा, नहीं तो मैं तुम्हारी अच्छी तरह मदद करता।"

डॉक्टर साहब भी उसे देख ख़ुश हुए।

इधर रघुवीरसिंह ने जब देखा कि जिस लड़की की खोज कर रहा हूँ, उसका पिता यहाँ मौजूद है, तो मामले के सुलझने में मदद ही नहीं मिलेगी, बल्कि उसके द्वारा उस लड़की और मेरी ललिताकुँवरि का कोई संबंध है या नहीं, इसका फ़ैसला भी हो जायगा। इसलिए यह भी बड़े ख़ुश हुए, और कहा—"वाह बुड्ढे, वाह ! तुमने पहले ही क्यों न बतला दिया। अब आराम से बैठो। हमारे संग ही वापस घर चलना।"

बुड्ढे ने मन-ही-मन भगवान् को धन्यवाद दिया, और कहा—"लो, यह तो मारने और निकालने के बदले उलटी मेरी ख़ातिर करने लगे।"

उधर बाग़बान की कैफ़ियत सुनिए। जब उसने अपने कानों यह सुन लिया कि यह बुड्ढा ही ललिता का पिता है, तो अपनी ख़ुशी को रोक न सका, और एकदम मुड़कर पीछे देखने लगा। उसके हाथ काँपने लगे। हाथ में फूल-पत्ती रखने को जो काँच का फूलदान पकड़े था, वह हाथ से छूटकर ज़मीन पर गिर पड़ा, और टूट गया। इसकी आवाज़ से सब-के-सब उधर ही देखने लगे।

रघुवीरसिंह ने बाग़बान की इन हरकतों से यह निश्चय कर लिया कि इससे भी कुछ भेद मिल सकेगा। इस तरह रघुवीरसिंह की ज़ंजीर में ज़रा देर में कड़ियाँ इकट्ठी होना शुरू हो गईं, बल्कि उन्होंने समझा कि ज़रा-सी ही देर में इस ज़ंजीर की आख़िरी कड़ी भी मिली जाती है! इन्होंने बाग़बान पर तरस दिखाकर कहा—"मालूम होता है, इसकी तबीयत ठीक नहीं है। इसे जाने दिया जाय, तो अच्छा।"

इस पर राजा साहब ने बाग़बान से बाहर जाने को कहा, और वह रघुवीरसिंह की तरफ़ कृतज्ञता की नज़र से देखता हुआ, दक्षिण-दरवाज़े से बाहर निकल, दरवाज़े में ताला लगा बाग़ में घुस गया।

---

(३१)

रिंदे ख़राब हाल को ज़ाहिद न छेड़ तू;
तुझको पराई क्या पड़ी, अपनी निबेड़ तू।

—ज़ौक़

रघुवीरसिंह का सिगार बुझ गया था। उन्होंने दियासलाई से फिर उसे जलाया, और एक कुर्सी पर बैठ, सिर पर हाथ रख कुछ सोचने

लगे। ज़रा देर बाद मन-ही-मन कहने लगे—अरे, वाह रे डिटेक्टिव के बच्चे! सारी दुनिया के लोगों से बातें कर डालीं, दुनिया-भर का चक्कर लगा बैठे, मगर जिस कमरे में वह लड़की रही, उसकी चीज़ों की देख-भाल ही नहीं की! वह बड़बड़ाते हुए उठे, और राजा साहब तथा डॉक्टर साहब से पूछने लगे—"क्यों साहब, आपने जिस कमरे में वह लड़की थी, उसकी सब चीज़ों को अच्छी तरह देख लिया था? वहाँ कोई चीज़ ऐसी तो नहीं मिली, जिससे उसका पता चलाने में मदद मिल सके?"

इन लोगों ने कहा—"जनाब, आत्महत्या की ख़बर मिलने के बाद हम लोगों में इतनी ताक़त ही कहाँ बाक़ी रही थी, जो देख-भाल करते। और, उस रोज़ से फिर उस कमरे में क़दम रखने ही को किसका जी चाहता है।"

रघुवीरसिंह ने कहा—"चलिए, अब देखें।"

इस तरह रघुवीरसिंह राजा साहब और डॉक्टर साहब को साथ लिए उस कमरे में गए। ख़ाँ साहब भी पीछे हो लिए। मेहते नवलसिंह भी हिम्मत कर घुस चले। उन्होंने मन में कहा—जिस घर में मेरी मोड़ी रही, उसे माथा टेक उसकी धूल तो अपनी आँखों से लगा लूँ।

रघुवीरसिंह ने हरएक कोने और प्रत्येक वस्तु को ध्यान से देखना शुरू किया। अलमारियों के किवाड़ और उनकी दराज़ों को खोल-खोल-कर देखा। सिंगार-मेज़ के ख़ानों को देखा, लिखने की मेज़ और उस पर रक्खे काग़ज़, दावात, क़लम को देखा। दूर से डोरे में बँधी कोई चीज़ चमकती हुई-सी दिखाई पड़ी। रघुवीरसिंह ने हाथ बढ़ा उसे उठाया, तो वह सोने का कोई तावीज़ था, जिसमें कोई नगीना-सा जड़ा था। ख़ाँ साहब इसे देख दूर ही से चिल्ला उठे—"यह तावीज़ उसी लड़की का है। गाँव में रुपया चुकाने की ग़रज़ से उसने यह तावीज़ निकालकर अपने बाप को दिया था कि इसे बेचकर वह रुपया भर दें,

और उसके बाप ने यह कहकर कि इसमें झूठा नगीना लगा है, इसकी कोई क़ीमत नहीं, उसे वापस दे दिया था।"

बुड्ढे मेहत्ते ने यह सुन लिया। वह आगे बढ़ा, और तावीज़ पहचानकर चिल्ला उठा—"हाँ, यह तावीज़ लल्लो का ही है। ज़रूर मरतेवक़्त उसने इसे उतारकर धर दिया होगा।" और "हाय लल्लो!" कहकर रोने लगा। फिर आँसू पोंछ वह रघुवीरसिंह से वह तावीज़ माँगने लगा।

रघुवीरसिंह ने कहा—"बुड्ढे बाबा, तुमने तो कहा था कि यह तावीज़ झूठे नगीने का है। फिर इसे लेकर तुम क्या करोगे? हमारे ही पास रहने दो।"

मेहत्ते ने रोते-रोते कहा—"सो नहीं होगा महाराज! तुम कहा जानो, वामें का धरो है। लल्लो मर गई, तो भी जा तावीज़ को नहीं छोड़ूँगा।"

रघुवीरसिंह ने इस बुड्ढे की बातों से बड़ा मतलब निकाला। उसके ये लफ़्ज़ "तुम कहा जानो, वामें का धरो है।" उनके कान में रह-रहकर गूँजने लगे। उन्होंने सोचा, इस तावीज़ में ज़रूर कोई चीज़ भरी है, और इसमें ज़रूर कोई भेद है। उन्होंने बुड्ढे से कहा—"बाबा, अभी हमारे पास रहने दो। हम तुम्हें वापस कर देंगे। हम खा नहीं जायँगे"

बुड्ढे ने कहा—"अच्छा महाराज, रहने दो, पर उसे खोलियो मत।"

यह सुन रघुवीरसिंह चौकन्ने हो गए, और बुड्ढे की तरफ़ निगाह गड़ाकर देखने लगे। फिर राजा साहब से घड़ी देखकर कहा—"आपको बड़ी देर इस झंझट में हो गई। आप चाहें, तो घर लौट जा सकते हैं, और चाहें, तो बाहर सैर करने जा सकते हैं। मैं तो आपके बाग़ पर मुग्ध हो गया हूँ। शाम को यहीं, बाग़ में, बैठ कर आराम करना चाहता हूँ।"

राजा साहब तो नहीं, पर डॉक्टर साहब समझ गए कि रघुवीरसिंह अकेले रहकर कुछ काम करना और हम लोगों को टरकाना चाहते हैं। इसलिए कहने लगे—"अच्छा, आप यहीं आराम कीजिए। हम लोग बाहर घूम आते हैं। हम अपनी मोटर यहीं छोड़े जाते हैं। अगर हमारे आने से पेश्तर घर लौट जाना चाहो, या और कहीं जाना चाहो, तो चले जाना। हम यहाँ घंटे-डेढ़ घंटे में आ जायँगे।"

यह कह डॉक्टर साहब राजा साहब को साथ ले और ख़ाँ साहब को भी मोटर में आगे बिठा चलते बने।

---

(३२)

दुनिया का अजीब कारख़ाना देखा;
किस-किसका न याँ हमने ज़माना देखा।
बरसों रहा जिनके सिर पर छतरे-ज़री;
तुरबत पै न उनकी शामियाना देखा।

—अनीस

अब रघुवीरसिंह और मेहते जी बाहर बाग़ में चले आए। रघुवीर-सिंह बाहर एक संगमरमर के सिंहासन पर जाकर लेट गए, और मेहते जी एक पत्थर की बेंच पर, जो ज़रा हटकर पड़ी थी, जा बैठे।

आध घंटे बाद रघुवीरसिंह उठे, और टहलते हुए उस जगह पहुँचे, जहाँ बाग़बान मेहँदी की रौसों को काटकर ठीक कर रहा था। बाग़बान ने आँख उठा जब देखा कि ये नए आगंतुक पीछे खड़े हैं, तो हाथ जोड़ खड़ा हो गया। बाग़बान ने जो बातें अब तक हुईं, उनसे यह तो समझ लिया था कि यह कोई पुलिस के आदमी नहीं। पर तब भी यह क्या चाहते हैं, और क्यों मेरे पीछे पड़े हैं, यह उसकी समझ में न आया। रघुवीरसिंह ने अपने मन में निश्चय कर लिया कि लड़की मरी

हो या ज़िंदा, बाग़बान को उसका भेद ज़रूर मालूम है। उन्होंने बात चलाने को कहा—"क्यों भैया! वह लड़की इसी दरवाज़े से निकलकर गई थी न?"

बाग़बान चकराया कि यह जादूगर है या क्या, इसे कैसे मालूम हुआ! वह सिटपिटा गया।

तब फिर उन्होंने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा—"भैया, मुझ पर भरोसा रक्खो। जो बात तुम कहोगे, उसमें तुम्हारी भलाई के सिवा बिगाड़ कभी नहीं होगा। तुमने उसे बचाकर भगाने में जो मदद की है, वह बड़ी भलमनसी का काम किया है। तुम डरते क्यों हो? सब हाल सच्चा-सच्चा बता दो। मैं परमेश्वर की सौगंद खाकर कहता हूँ, तुम हम सब पर उपकार करोगे, और साथ ही अपना भी भला। देखो, तुम्हारे मालिक पहले की तरह अब बुरी वासना नहीं रखते। तुम्हें उसी वक़्त डर हो सकता था, जब उन्हें उसे पकड़कर फिर वैसा ही बर्ताव करने की इच्छा होती। पर अब तो वह उसे अपनी बेटी और बहन समझने लगे हैं। उसका बाप उसकी तलाश में मारा-मारा फिर रहा है, और तुम्हें मालूम है, इस समय वह भी यहीं मौजूद है। तुम बात छिपाकर कितनों को मुफ़्त में दुःख पहुँचा रहे हो, और उस लड़की का भी भला नहीं कर रहे हो। अगर पिता को अपनी लड़की मिल जाय, तो कितनी ख़ुशी होगी, और वह तुम्हारा कितना उपकार मानेगा, हमें भी उस बालिका के दर्शनों का लाभ होगा, और सब लोगों के मन में जो पश्चात्ताप हो रहा है, उससे सब-के-सब छुटकारा पाकर तुम्हें दुआ देंगे।"

बाग़बान का दिल इस लंबी वक्तृता से भर आया। उसने डरकर और रुक-रुककर सब हाल धीरे-धीरे रघुवीरसिंह से कह दिया, और यह भी वादा किया कि वह उन्हें अपने घर ले जाकर लड़की को जीती-जागती दिखा देगा। बस, यह पहेली सुलझाकर उन्हें जितनी ख़ुशी

हुई, उसे कहते नहीं बनता। उन्होंने दौड़कर मेहतेजी से कहा—"मेहतेजी, लो, तुम्हारी बेटी जीती है, और आज ही तुम्हें उससे मिला देंगे।"

बुड्ढा ख़ुशी के मारे नाचने लगा, और इनके पैरों पर गिरकर कहने लगा—"भैया, भगवान् तुम्हारा भला करेंगे।"

तब इन्होंने बाग़बान को भी वहीं बुला लिया, और इन दोनों बुड्ढों को मिलाकर वह फिर अपने सिंहासन पर आ लेटे। इन बुड्ढों की आपस में ख़ूब घुट-घुटकर बातें होने लगीं।

ज़रा देर बाद रघुवीरसिंह ने मेहतेजी को आवाज़ देकर बुलाया। उनके आने पर बड़ी नम्रता से रघुवीरसिंह कहने लगे—"मेहतेजी, लो, तुम्हारी लड़की का तो हमने पता लगा दिया। वह जीती-जागती ही नहीं, वरन् जैसी सती-साध्वी घर से निकली थी, वैसी ही अब तक बनी है। उसके दामन को हवा भी नहीं छू सकी। पर हम ने जो इतनी मेहनत की, उसका एवज़ हमें क्या दोगे?" और यह कहकर मुस्किरा दिए।

मेहतेजी ने अपने मन में सोचा, शायद यह तावीज़ माँगता होगा। कहने लगे—"महाराज, उस तावीज़ के अलावा जो तुम मेरी जान भी माँगो, तो हाज़िर है।"

रघुवीरसिंह तो बातों में मेहते को अपने मतलब पर ला रहे थे। बोले—"उस तावीज़ में कौन-सी करामात है, यह तो हमें बतलाओ।"

मेहतेजी ने कहा—"सो मत पूछो, इस तावीज़ की कथा सुनकर तुम कौन ख़ुश होगे!" यह कहते हुए समुद्र में जहाज़ डूबने का दृश्य उनकी आँखों के सामने आ गया, और वह बच्चों की तरह फूट-फूटकर रोने लगे।

रघुवीरसिंह ने उन्हें बहुत ढाढ़स दिया, और कहा—"मेहतेजी, इस तावीज़ से और तुम्हारे इस तरह दुखी होकर रोने-धोने से क्या संबंध है? क्या यह किसी की निशानी है?"

मेहतेजी ने लंबी साँस लेकर फिर वही उत्तर दिया—"सो कुछ मत पूछो।"

अब तो रघुवीरसिंह को ख़ुशामद-दरामद और लल्लो-चप्पो से ही काम निकलता दिखलाई पड़ने लगा। उन्होंने कहा—"देखो बाबा, जैसे कुम्हार मिट्टी के खिलौने बनाते वक्त कोई बड़ा और कोई छोटा, किसी को बढ़िया और किसी को घटिया बनाकर केवल अपनी दूकान सजाने और सब प्रकार के ग्राहकों को आकर्षित करने का ही उद्देश्य रखता है, वैसे ही परमेश्वर ने भी इस दुनिया में बड़े और छोटे, अमीर और ग़रीब, सब तरह के मनुष्य पैदा किए हैं। हम सबको परमेश्वर ने जिस उद्देश्य से दुनिया में पैदा किया है, उसे याद रखना चाहिए। पर हम दुनिया में आकर वह सारी बात भूल जाते हैं। बड़े अपने बड़प्पन में छोटों से घृणा करने लगते हैं, और उन्हें पैरों से ठुकराते हैं। अमीर लोग ग़रीबों की परवरिश और सहायता तो रही एक तरफ़, उन्हें नीच समझते हैं, और जो उनके पास हो, उसे भी खींच लेने की फ़िक्र में रहते हैं। उन्हें यह नहीं मालूम कि लक्ष्मी चंचला है। वह सदा एक जगह और एक के पास जमकर नहीं रहती। लोग देखते हैं, बुरे कर्मों और उद्दंडता की सज़ा परमेश्वर तत्काल ही दे देते हैं, पर इससे भी शिक्षा ग्रहण नहीं करते। रात-दिन पैसे ही के चक्कर में पड़े रहते हैं। भाई-भाई भी एक दूसरे का गला काटने को तत्पर रहते हैं। लोग जानते हैं, बड़े-बड़े बादशाह चले गए, उनका नाम-लेवा और पानी-देवा भी आज नहीं। तब भी मनुष्य अहंकार में मस्त हैं, और अपने दुनिया के झूठे नाम के लिये मरते फिरते हैं। यह नहीं समझते कि जब बड़े-बड़े शाहंशाहों के नाम आज किसी को याद नहीं रहे, तो उनके नाम कितने दिन चलेंगे। बस बाबा, यह संसार झूठा है, और इसकी सारी माया झूठी। मनुष्य अपनी ओर से अपना कर्तव्य पालन करता रहे, और सारा श्रेय परमेश्वर पर छोड़ दे। बाबा, मैं तुम्हारे दुख और सुख में, समान

रूप से, साथ देने को तैयार हूँ। यदि तुम उचित समझो, तो इस तावीज़ का भेद बताकर मुझे इस उलझन से निकाल लो।"

यह सुनकर मेहतेजी का हृदय आह्लादित हो गया। वह मन-ही-मन कहने लगे · यह तो कोई मनुष्य-रूप में देवता दिखलाई देता है। बस, ज़रा-सी देर में सारी बातें एक-एक करके उगल दीं।

रघुवीरसिंह को सपने में भी ख़याल न था कि वह इस उलझे हुए मामले को इस तरह, इतनी जल्दी सुलझा लेंगे। उन्होंने मन में परमेश्वर को अनेकानेक धन्यवाद दिए, और कहा—भगवान्, जिसे तुम यश दिलाना चाहते हो, उसे बात-की-बात में, बिना परिश्रम, दिला देते हो।

---

(३२)

जिन सज्जन मन माहिं नित जागत पर-उपकार ;
बेगि तासु नशु बिपति अति, पग-पग मिलु धन-भार।

—चाणक्य

❀ ❀ ❀

सर-सर हंस न होत, वाजि-गजराज न दर-दर ;
तर-तर सुफर न होत, नारि पतिव्रता न घर-घर।

—नरहरि

रघुवीरसिंह इस तरह भगवान् को मन-ही-मन धन्यवाद दे रहे थे कि मोटर में राजा साहब मंडली-सहित वापस आ धमके। इन्हें अत्यंत प्रसन्न देख पूछा—"क्यों, क्या कोई सुराग़ मिला?"

इन्होंने जवाब दिया—"मेरा विचार कल ही की गाड़ी से बंबई वापस जाने का है।"

ये लोग इसका मतलब कुछ भी न समझे, और इधर-उधर झाँकने लगे। देखते हैं, तो सब के चेहरों पर ख़ुशी के चिन्ह हैं। मेहतेजी को देखा, तो ख़ुशी से फूले पड़ते हैं। बाग़बान, जो ज़रा देर पहले मरा हुआ और काम करने में काँपता जाता था, सीधा खड़ा है, और उसका चेहरा भी ख़ुशी से दमदमा रहा है। इन्होंने समझ लिया, रघुवीरसिंह ने कुछ अच्छी बात सुनी है, या यह पता चला लिया है कि लड़की मरी नहीं, जीती है।

इतने में रघुवीरसिंह बोले—'मुझे जल्द जाकर तारघर में तार देना है, इसलिये आप लोग यहाँ ठहरना चाहते हों तो ठहरिए, मैं तार देकर वापस आ जाता हूँ।"

डॉक्टर साहब ने हाथ पकड़कर कहा—"अब अपना डिटेक्टिवपना रहने दो। झट बतलाओ, बात क्या है। अब तक फ़िक्र में मरे, और अब तुम अपनी बातों की उलझन में डालकर मारो।"

रघुवीरसिंह ने मज़ाक़ से कहा—"ख़ाँ साहब की तरह हमें भी तुम कोई ऐसी दवाई ला दो, जिससे लोग बेहोश हो जाते हों। तब हम अभी उस लड़की को उड़ाकर यहाँ ले आते हैं।

डॉक्टर साहब ने कहा—"बस, यार, इस तरह दुशाले में लपेट-लपेटकर मत मारो। मेरी ज़िंदगी का वह अध्याय समाप्त हो चुका। बस, अगर तुमने उसका पता लगा लिया है, तो हमें ले चलो, हम सबको उसके चरणों में गिरकर क्षमा माँग लेने दो। उसके क्षमा करने पर हम सब, जो मरे हुए-से हैं पुनः जीवित हो जायँगे।"

यह सुन रघुवीरसिंह ने "अच्छा, तो चलिए" कहकर राजा साहब की मोटर में राजा साहब और डाक्टर साहब को बैठाया, और बाग़-बान को आगे, चलानेवाले के पास, बिठाया, तथा उसके कान में कहा—"तुम अपने घर की तरफ़ मोटर लिवा ले चलो। हम दूसरी मोटर में तुम्हारे पीछे आते हैं।"

दूसरी मोटर में वह ख़ुद बैठे, और ख़ाँ साहब को पास बिठाना चाहा, पर वह अपने आप नीचे, इनके पैरों के पास, आ बैठे। आगे की सीट पर मेहतेजी अपने आप जाकर बैठ गए। इन्हों ने उन से बहुत कहा कि वह और ख़ाँ साहब पीछे की सीट पर बैठ जायँ, और मैं आगे की सीट पर बैठूँ, पर उन्होंने इनकी एक न मानी।

* * *

ललिता अपनी चारपाई पर बैठी बाग़बान के आने की राह देख रही थी। वह इसी सोच में थी कि आज उन्हें देर क्यों हुई। नौकरानी इसकी चारपाई के पास बैठी कुछ गुनगुना रही थी।

इतने में सड़क पर मोटर आती दिखलाई दी। इधर मोटरें बहुत कम निकलती थीं, इसलिये ये दोनो बड़ी उत्सुकता से देखने लगीं कि मोटर किस तरफ़ जा रही है। देखती क्या हैं, मोटर इनके खेत के दरवाज़े पर रुक गई, और दूर से नौकरानी ने राजा साहब और डॉक्टर साहब को उतरते देख लिया, और फिर आगे-आगे बाग़बान को उन्हें खेत के भीतर लाते देखा। वह चिल्ला उठी—"बेटी, भागो-भागो, वे नर-पिशाच यहाँ भी आ गए। देखो, इस बूढ़े को क्या हो गया है, जो ख़ुद लिवा ला रहा है। मालूम होता है, उन्होंने मार-पीटकर इससे सब उगलवा लिया है।"

इतने ही में दूसरी मोटर भी आ धमकी। इसमें से ख़ाँ साहब और उनके साथ एक नए आदमी को उतरते देखा, और पीछे-पीछे मेहतेजी को भी। स्त्री तो चिल्लाती ही रही कि लो, वह ख़ाँ साहब भी आ गए। पर ललिता ने अपने बाप को दूर से पहचान लिया, और बोली—"अरे, कुछ डर की बात नहीं। देखो, वह मेरे कक्का भी आ रहे हैं।"

यह कह पलँग से उठ दौड़ी, और पहली पार्टी को बचावा दे अपने पिता की छाती से लिपट गई, और ख़ूब गले मिल-मिलकर रोने लगी।

फिर जो नए आदमी को उनके साथ देखा, तो ज़रा सकुचा-सी गई, और धोती का पल्ला सिर से मुँह की ओर खींच लिया। ललिता ने आज तक इस तरह किसी से शरम नहीं की थी, बल्कि खुले मुँह दौड़ा-फिरा करती थी। आज अपने आप इस नए आदमी से, जिसके नाम-गाँव की इसे कुछ खबर तक नहीं, इसे शरम करने की कैसे सूझी ? ललिता भी अपने आप मन-ही-मन यह प्रश्न करने लगी। रघुवीरसिंह भी इसका रूप, मुख की प्रभा तथा आँखों की ज्योति देख हक्के-बक्के-से रह गए। एक नज़र देखने के बाद इच्छा होने पर भी आँख ऊपर नहीं उठीं। यह भी मन में सोचने लगे—परमेश्वर, यह तुम्हारी क्या लीला है ?

सब-के-सब आ बाग़बान की झोपड़ी के सामने बैठ गए। बाग़बान और मेहतेजी ने अपनी-अपनी सारी कथा कह सुनाई। राजा साहब, डॉक्टर साहब और ख़ाँ साहब, तीनो नीची गर्दन किए बैठे सुनते रहे।

राजा साहब ने कहा—"देवी ! हमने जो बिना कारण अपनी भ्रष्ट मति से तुम्हें कष्ट पहुँचाया, उसके लिये क्षमा प्रदान करो।"

मेहतेजी ने धीरे-धीरे और फिर जल्दी-जल्दी राजा साहब, डॉक्टर साहब और ख़ाँ साहब के जीवन में जो परिवर्तन हुआ था, उसका सारा हाल ललिता से कह दिया।

यह सब सुनने के बाद ललिता ने उन तीनो को प्रणाम किया, और कहा—"आप सब मेरे बड़े हैं। आपकी दया मुझे चाहिए। जो होना था, सो हो गया। परमेश्वर को यह सब लीला रचनी मंज़ूर थी। भगवान् आप सबका भला करेंगे।"

डॉक्टर साहब ने उस नौकरानी के कार्य की दिल खोलकर प्रशंसा की, और कहा—"बहन, जो ज़च्चाख़ाना मैंने खोला है, उसका काम अब तुम सँभालो।"

नौकरानी ने आँखों में आँसू भरकर कहा—"जो आज्ञा। मेरा तो इस देवी ने जन्म सफल कर दिया।"

इस पर डॉक्टर साहब ने कहा—"केवल तुम्हारा ही नहीं, हम सब का जीवन इस देव-कन्या ने बदलकर हमें सीधे रास्ते लगा दिया।"

रघुवीरसिंह यह सब तमाशा खड़े-खड़े देखते रहे। सब अपने-अपने राग में मस्त थे। वह इसकी प्रशंसा करता, और यह उसकी। इन बेचारे को कोई पूछता ही नहीं। इतने ही में मेहतेजी ने फिरकर जब रघुवीरसिंह जी को देखा, तो खड़े हो गए, और बोले—"बेटी, अगर हमारे सब के साथ किसी ने सच्चा उपकार किया है, तो इन महापुरुष ने। अगर यह पता न चलाते, तो तुम्हारे दर्शन कैसे होते, और यह भेद छिपा ही रह जाता। इसलिये तुम सबसे पहले इनके पैर पड़ो।"

ललिता पिता की आज्ञा का पालन करने के लिये नीची आँख किए उठने लगी, पर रघुवीरसिंह ने बैठे रहने का आग्रह कर कहा—"देवी, मैं तुम्हारी महिमा इस ज़रा-सी देर में भले प्रकार देख चुका हूँ। इतने बड़े-बड़े और वृद्ध लोग तुमसे क्षमा माँगने और तुम्हारे चरण-स्पर्श करने को उत्सुक हैं, तो तुम इस क्षुद्र जीव की, अपने पिता के बहकावे में आकर, क्यों हँसी उड़ाती हो?"

ललिता ने यह सुन, लज्जा से गर्दन झुका सिर नीचा कर लिया। रघुवीरसिंह जी भी मुस्किराते हुए खड़े रहे।

ज़रा देर बाद रघुवीरसिंह ने डॉक्टर साहब से कहा—"देखिए, आपकी बातों-बातों में मेरा तार देना आज रह गया। अब आप सब लोग यहाँ कब तक बैठे रहेंगे?"

मेहतेजी को भी अपने बेटे देवीसिंह की याद आई, और इस धूम-धड़क्के के कारण ललिता भी देवी भैया के बारे में कुछ पूछ-ताछ नहीं सकी थी। इसलिये मेहतेजी ने ललिता से कहा—"देवी भी घर आकर बैठा होगा। उसे क्या मालूम, उसकी बहन आज ही उसे मिल जायगी।"

रघुबीरसिंह ने डॉक्टर साहब और राजा साहब को अलहदा ले जाकर कुछ सलाह-सी की। आख़िर यह निश्चय हुआ, राजा साहब की बाग़वाली कोठी पर जा कर ललिता और उसके साथ की नौकरानी, बाग़बान और उसकी स्त्री, मेहतेजी और उसका लड़का देवीसिंह रात में आराम करें। सुबह फिर क्या होगा, देखा जायगा। ललिता चाहती थी, बाग़बान की ही झोपड़ी में रहे, और वहीं मेहतेजी तथा देवीसिंह भी आ जायँ। पर सब लोगों ने उसकी नहीं चलने दी। मोटरें रवाना हुईं। एक में सब लोग भरकर बाग़ की तरफ़ रवाना हो गए, और दूसरी में राजा साहब, डॉक्टर साहब और रघुबीरसिंह जी महल की ओर रवाना हुए। चलते समय कहते गए, महल पहुँचते ही देवीसिंह को खाने की सामग्री लेकर बाग़ भेजते हैं।

---

(३४)

वंदनीय वह देश, जहाँ के देशी निज अभिमानी हों;
बांधवता में बँधे परस्पर परता के अज्ञानी हों।
—श्रीधर पाठक

देवीसिंह जब मजूरी से लौटे, और अपने पिता के दोपहर बाद ग़ायब होने की ख़बर सुनी, तो बड़े सटपटाए फिरते थे। कभी बाहर सड़क तक जा-जाकर राह देख रहे थे। राजा साहब की मोटर महल में आती देखी, तो सरक कर एक तरफ़ हट गए। राजा साहब ने मोटर से उतरते ही एक नौकर को नए नौकर की कोठरी में उसके लड़के को ढूँढने भेजा। देवीसिंह ने जब यह ख़बर सुनी, तो डर गया। सोचा, राजा साहब ने मुझे क्यों बुलाया। कोई ऐसी-वैसी बातें तो कक्का से नहीं बन पड़ीं। फिर कहा, डर काहे का, चलो, और नौकर के साथ आकर राजा साहब के सामने खड़ा हो गया।

राजा साहब ने इसे पहले कभी नहीं देखा था। इस तगड़े, कसरती जवान को ललिता का भाई जान बड़े ख़ुश हुए। बड़े प्यार से पास बुलाया, और कहा—"तुम्हारी बहन मिल गई, और तुम्हारे पिता उन्हीं के पास हैं। तुम्हारे संग मैं भोजन की सामग्री भेजता हूँ, तुम लेकर मोटर में चले जाओ।" राजा साहब यह कहकर ऊपर चढ़ गए, और देवीसिंह मारे ख़ुशी के कूदने लगे।

थोड़ी देर में एक बड़े टोकरे में खाने की सामग्री राजा साहब के भोजन-गृह से एक आदमी सिर पर रखकर लाया, और देवीसिंह के हवाले कर दी। मोटरवाले ने उसे मोटर में रख लिया, और देवीसिंह को भी उस में बिठा कोठी की तरफ़ रवाना हो गया। कोठी पर इन्हें उतार वह मोटर ले महल वापस चला आया।

देवीसिंह टोकरी सिर पर रख, मस्त हाथी की तरह, भीतर घुसे। बाग़बान राह ही देख रहा था। झट सहारा दे भीतर ले आया। देवी-सिंह सिर का बोझ नीचे रख, दौड़कर ललिता के गले लग गए, और "मेरी लल्लो" ! "मेरी लल्लो !" कहते हुए बड़ी देर तक रोया किए। यह रोना रंज का नहीं, ख़ुशी का था। ललिता भी यह कहकर ख़ूब रोई कि "देवी भैया ! तुमने बड़े-बड़े संकट झेले होंगे।"

जैसे यहाँ ख़ुशी का राग अलापा जा रहा था, वैसे ही महलों में राजा साहब भी बड़े प्रसन्न थे, मानो उन्हें कोई खोई हुई क़ीमती वस्तु फिर मिल गई हो। डॉक्टर साहब भी ख़ूब ख़ुश थे कि उनके जीवन में जो काँटा खटक रहा था, वह आज निकल गया। ख़ाँ साहब भी यह समझकर निहायत ख़ुश थे कि ख़ुदा ने उनकी दुआ क़बूल की।

* * *

इन सबकी बातें तो हुईं। अब ज़रा हमारे नए आए हुए मित्र रघुवीरसिंह का भी तो हाल सुनिए।

उनकी कुछ मत पूछिए। कभी तो अपने कार्य की सफलता पर

फूले नहीं समाते, कभी माथा पकड़ फ़िक्र और सोच में डूब जाते हैं, निराशा होने से चेहरा उतर जाता है।

सब लोग ज़रूर सुख की नींद सोए होंगे, पर रघुवीरसिंह सारी रात पलँग पर करवटें ही बदला किए। पर यह क्यों?

---

(३५)

लूटा है उस निगाह ने मिलकर निगाह से;
चोरी गया है दिल इन्हीं आँखों की राह से।

—आह

इस मामले की खोज में रघुवीरसिंह ने जिस दिन से हाथ डाला, उसी दिन से इनके दिल में एक विशेष प्रकार का आकर्षण आरंभ हो गया था। पर जब से जीती-जागती प्रतिमा को सम्मुख देख लिया है, हृदय पर एक अद्भुत और प्रबल शक्ति ने मज़बूती के साथ क़ब्ज़ा कर लिया है।

एक साधारण ग्रामीण की बालिका को अपने परिश्रम से एक बड़ी संपत्ति की उत्तराधिकारिणी सिद्ध करने में जो सफलता इन्होंने प्राप्त की, उससे वास्तव में इन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

पर जब यह अपने हृदय को टटोल इस बालिका से उसका संबंध जोड़ते हैं, तब दूसरा ही भाव पैदा हो जाता है। इतनी धन-संपत्ति की मालकिन होने पर भी क्या उसे प्राप्त कर लेने की आशा की जा सकती है? इस प्रश्न ने दिल में उठ-उठकर खलबली मचा रक्खी है।

आप जानते हैं, नदी के स्थगित पानी में एक फूल या तिनके को भी बहाने की शक्ति नहीं होती, पर जब ऊपर से बहाव का पानी आ जाता है, तब वही नदी की धारा कैसा भयंकर रूप धारण कर लेती है कि अपने वेग में बड़े-बड़े पहाड़ों को भी उखाड़कर बहा ले जाती है।

यही हाल सच्चे प्रेम का है। जब तक मनुष्य के हृदय में उसका अंकुर उत्पन्न नहीं होता, तब तक कैसी भी सुन्दरता हो, कितने भी अटूट गुणों से संपन्न कोई व्यक्ति हो, उसका हृदय पर कोई असर नहीं होने पाता। पर जब किसी मूर्ति की छाया पड़ कर जम जाती है, तब वही हृदय ऐसा विकट रूप धारण कर लेता है कि क्षण-भर के लिये भी बिना उसे देखे चैन मिलना असंभव हो जाता है।

हमारे मित्र रघुवीरसिंहजी की भी यही दशा थी। जब तक दिल में किसी ने स्थान नहीं पाया था, दुनिया में किसी भी स्त्री के रूप और गुणों पर वह मोहित नहीं हुए थे। पर अब जब से ललिता की प्रतिमा वहाँ जमकर बैठी है, तब से हृदय के उत्पात का ठिकाना नहीं रहा।

बस, इस तरह इन्होंने जैसे बना, तैसे रात काटी। सुबह उठकर डॉक्टर साहब से मिले, और मेहतेजी ने जो कथा इनको सुनाई थी, सब-की-सब, ज्यों-की त्यों उन से वर्णन कर दी, और कहा—"जिस काम के लिये मैं आया था, वह पूर्ण हो गया। अब मुझे शीघ्र ही अपने घर वापस जाना है।"

इन्होंने आज ही दोपहर की गाड़ी से जाने के लिये आग्रह किया, पर डॉक्टर साहब ने कहा—"जब इतना बड़ा कार्य संपन्न हो चुका है, जिसने हम सब के जीवनों को एकदम पलट दिया है, तो उसकी ख़ुशी में यदि हम सब मिलकर कोई उत्सव न मनावें, तो ठीक नहीं मालूम पड़ता। इसलिये आज रात हम सब मिलकर भोजन करें, कल दिन की गाड़ी से आप वापस चले जा सकते हैं।"

डॉक्टर साहब ने मन में सोचा, यदि रघुवीरसिंह और ललिता का विवाह हो जाय, तो कैसा अच्छा हो!

बाद में यह निश्चय हुआ कि सिवा नवलसिंह मेहते और रघुवीर-सिंह के ललिता कौन है, और कितने धन की अधिकारिणी हो गई है, यह किसी को मालूम नहीं। इसलिये राजा साहब से मिलकर उनके महल में सब को एकत्र कर सारा भेद खोल देना ही उचित होगा।

बस, ये दोनो मोटर में बैठ राजा साहब के महल पर आए। राजा साहब स्नान कर बाहर निकले ही थे कि इनके आने की ख़बर मिली। झट ज़ीने पर जा उनका स्वागत किया। फिर एक सोफ़े पर बैठकर इन तीनो की कुछ गोष्ठी हुई। राजा साहब ने ख़िदमतगार को बुलाया, और कहा—"देखो, मेहते नीचे आए हैं क्या ?"

मगर मेहतेजी वहाँ क्यों होने लगे थे। उन्होंने तो नौकरी ही ललिता का पता चलाने को की थी। तब राजा साहब ने अपनी और डॉक्टर साहब की मोटर बाग़वाली कोठी पर भेज उन सबको यहाँ बुलवाया थोड़ी देर में सब-के-सब आ पहुँचे, और उसी कमरे में, जहाँ एक दिन देश-सेवक और सेविकाओं की कमेटी हुई थी, सब एकत्र हुए। उस दिन का समा कुछ और था, और आज का कुछ और ही। मेज़-कुर्सियाँ उठवा दी गईं थीं, इसलिये सब-के-सब ज़मीन पर जो क़ालीन बिछा था, उस पर बैठे। अब रघुवीरसिंह ने अपने सॉलिसिटर के पास से आई हुई विलायत की चिट्ठी और ललिता के गले का तावीज़, दोनो जेब से निकाल बाहर रक्खे, और फिर जहाज़ डूबने पर नवलसिंह के ज़रिए ललिता के बचने, उसका उन्हीं के यहाँ पालन-पोषण होने और अब जो चिट्ठी मिली है, उसका सारा हाल कह सुनाया। यह सुनकर सब-के-सब अवाक्-से रह गए। ललिता की आँखों में आँसू झलकने लगे।

रघुवीरसिंह ने ललिता की ओर देखकर कहा—"कुमारी ललिता-कुँवरिजी ! अब आप गाँव की ग़रीब बालिका नहीं रहीं, बल्कि बड़े घर की मालकिन बन रानी हो गई हैं।"

ललिता ने यह सुन, नीची गरदन कर उत्तर दिया—"मुझे धन की लालसा नहीं। मुझे तो अपने कक्का के प्यार से और अपने गाँव की सहेलियों में ग़रीबी से रहकर जो स्वर्ग का-सा सुख मिला है, वैसा आगे मिलेगा या नहीं, इसमें संदेह है।"

रघुवीरसिंह का दिल इस व्यंग्य का मतलब समझ गया। उन्होंने सोचा, कैसी निपुण बालिका है। मैंने जैसी चुटकी ली थी वैसा ही व्यंग्यमय उत्तर मिला है।

इनके शरीर में बालिका के इस उत्तर से जान-सी आ गई। जैसे कोई रोगी, जिसका बोल भी बंद हो गया हो, वैद्य की दी हुई मात्रा से फिर जीवित हो बोल उठता है, वैसे ही रघुवीरसिंह का हृदय, जो निशा-भर निराशा से मरा-सा हो रहा था, ललिता के इस कथन से हरा हो गया!

इनका मुख-कमल खिल गया। समझ गए, इस बालिका को भी मुझसे प्रेम है, और उसने जो यह कहा कि आगे कैसा सुख मिलेगा, यह इन्हीं पर फबती थी, यानी बालिका इनसे अपना संबंध हो जाना एक प्रकार से निश्चय कर चुकी है, ऐसा प्रतीत होता था।

अब मेहतेजी ने रघुवीरसिंह से ललिता का तावीज़ वापस देने को कहा। रघुवीरसिंह इसे इस काम की सफलता की यादगार में निशानी के तौर पर रखना चाहते थे। जब मेहते ने इसे वापस माँगा, तो देने तो लगे, पर बेमन से। दिल वापस देने को नहीं कहता था, पर वह इस छोटी-सी चीज़ के लिये सवाल करना भी ठीक नहीं समझते थे। सच पूछिए, तो इनके लिये वह छोटी-सी चीज़ नहीं, बल्कि अमूल्य थी। लाचार हो, इन्होंने मन की बात मन ही में रख उस तावीज़ को मेहते-जी के हवाले कर दिया। मेहतेजी ने उसे ललिता के हाथ में दे दिया। जैसे ही ललिता उसे अपने गले में डालने लगी, मेहतेजी बोल उठे—"बेटी! अब वह वक्त आ गया है, जब मुझे इस तावीज़ को खोलने का आदेश था। तुम अपने हाथ से इसे खोल डालो, और इसके भीतर जो काग़ज़ है, उसे पढ़कर सबको सुना दो।"

ललिता को क्या मालूम था कि इसके भीतर कोई काग़ज़ रक्खा है। उसने काँपते हाथों उसे खोला। उसमें इसके पिता माधोसिंह के

हाथ का लिखा वही काग़ज़ निकला, जो उन्होंने जहाज़ डूबते समय लिखकर, तावीज़ में रख ललिता के गले में बाँध दिया था।

इस काग़ज़ को देख रघुवीरसिंह की कली-कली खिल पड़ी। उन्होंने मन में कहा, मैं यों ही झख मारने को अपने आपको डिटेक्टिव कहता हूँ। मैंने नवलसिंह मेहते के कहने पर ही एतबार कर ललिता को धन का उत्तराधिकारी समझ लिया था। अगर यह चिट्ठी न होती, तो मैं अपनी इस खोज को क़ानून से किस तरह साबित कर सकता था। क्या मेरी इस जाँच-पड़ताल और मेहते के बयान के एतबार पर ही ललिता का वारिस होना कोर्ट मान लेता, और फिर यह सवाल उठने पर कैसी बीतती? फिर क़ानूनी लोग यह भी कह सकते थे कि धन के लोभ से ऐसी झूठी-सच्ची सैकड़ों रचनाएँ रची जा सकती हैं। ऐसा होने पर कैसा फ़जीता होता, और फिर मेरी बात कैसी हेटी होती। ये सब विचार मुझे पहले क्यों नहीं सूझे।

रघुवीरसिंह, तुम नहीं जानते। प्रेम के फंदे में सभी अंधे हो जाते हैं। तुम्हारे विवेक और ज्ञान ने यदि साथ छोड़ दिया हो, तो कौन-सी अचरज की बात है। कोई दूसरे का मामला होता, तो क्या तुम ऐसी भारी भूल कर सकते थे? नहीं। पर यहाँ तो तुम प्रेम के फंदे में फँसे हुए थे। तुम्हें चाहे यह मालूम न हो, पर परमात्मा ने ही यह आंतरिक भाव तुम्हारे हृदय में उत्पन्न कर दिया था, और उसी परमात्मा ने तुम्हें इस प्रकार निस्सहाय जानकर तुम्हारी सहायता की है। उसी भगवान् की कृपा से तुम्हें यह लिखित प्रमाण भी अपने आप प्राप्त हो गया है। जिसने तुम्हारे मन को डिगाया, उसी ने तुम्हारी भूल को भी सुधार दिया।

अब तो रघुवीरसिंह ने खुल्लमखुल्ला ललिता से कहा कि यह काग़ज़ मुझे दे दो। मेहतेजी ने भी 'हाँ' की, और कहा—"ज़रूर यह काग़ज़ आप अपने पास रखिए। यह आपके बड़े काम आएगा।"

ललिता ने उस काग़ज़ को उसी तावीज़ में रख रघुवीरसिंह के हवाले कर दिया। रघुवीरसिंह जिस वस्तु को अपने पास ख़ुद निशानी बनाकर रखना चाहते थे, वह इस तरह ललिता के हाथ से पा अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने मन-ही-मन कहा, अब तक तो मैं इसे अपने कार्य की सफलता की निशानी बनाकर रखना चाहता था, पर अब ललिता के हाथ से भेंट-स्वरूप पाकर, 'प्रेम की निशानी' समझ, हृदय पर धारण करूँगा। फिर चुपचाप उन्होंने उस तावीज़ को अपने गले में पहन लिया।

---

(३६)

अद्भुत डोरी प्रेम की, जामें बाँधे दोय;
ज्यों-ज्यों दूर सिधारिए, त्यों-त्यों लाँबी होय।

—राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

❀ ❀ ❀

सजनी! भला, क्यों मुझे यह गुड़िया का खेल
खेलना न नेक भी है भाता कुछ काल से।

—गोपालशरणसिंह

यहाँ पाठकों को यह शंका हो सकती है कि नवलसिंह ने ललिता-सहित जहाज़ से बच जाने पर उसका हाल विलायत, ललिता के चाचा ऊधो-सिंह को, क्यों नहीं लिख भेजा? हम भी उनसे सहमत हैं। नवलसिंह इस प्रश्न के पूछे जाने पर अट-पटाँग उत्तर देने लगते हैं। कभी तो कहते, हमें क्या विलायत का पता मालूम था। पर जब उनसे कहा जाता कि अगर पता मालूम न था, तो अख़बार में छपा देते। तब कहने लगते कि हम क्या ऐसे पढ़े-लिखे हैं, जो ऐसी बात हमें सूझ पड़ती।

कभी कहने लगते कि उन्हें पता लग जाता, तो लल्लो हमारे पास कैसे रह पाती। मानो यही उसका भरण-पोषण कर सके, उसके चाचा वैसा नहीं कर सकते थे।

कभी कहने लगते कि लल्लो के पिता की मरते समय यही इच्छा थी कि लल्लो को मैं अपने पास अपनी पुत्री बनाकर रक्खूँ।

ग़रज़ कुछ भी हो, चाहे नवलसिंह की अज्ञानता हो, चाहे इस बालिका की ओर उनका प्रेम हो, चाहे ललिता के पिता की इच्छा हो, उन्होंने जो कुछ किया, अपनी अक़्ल के माफ़िक़ अच्छी नीयत से किया, और इसलिये क्षमा के योग्य हैं। दूसरे जिसका अंत अच्छा हो, वह सारा कार्य अच्छा ही समझा जाता है। तीसरे, यदि मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचंद्रजी अपनी ईश्वरीय शक्ति से लंका का विध्वंस कर रावण को सहज ही में मार डालते, तो रामायण-सरीखे अनमोल ग्रंथ के लिखने अथवा उस सारी कथा के कहने-सुनने की नौबत ही न आती। इसी प्रकार यदि भगवान् श्रीकृष्णचंद्र अपनी ईश्वरीय माया से ही कंस का नाश कर डालते, तो उनकी अद्भुत लीलाओं के वर्णन करने और रसिक भक्तजनों को उनके सुनने का अवसर ही प्राप्त न होता। बस, इसी तरह यदि मेहतेजी ने ठीक-ठीक सब वैसा किया होता, तो इस सारी कहानी के कहने का मौक़ा ही न आता।

* * *

अब इस बात की चर्चा चली कि ललिताकुँवरि, जब तक इस मामले का फ़ैसला हो, कहाँ निवास करे। ललिता ने इस बात पर बहुत ज़ोर दिया कि वह तरनतारन-गाँव जाकर पहले की भाँति रहे। उसे अपनी सहेली रज्जो की बड़ी याद आती थी। पर सब लोगों ने इसे स्वीकार नहीं किया। मेहतेजी ने भी यही मत प्रकट किया। उन्होंने कहा, जब यह मालूम ही हो गया है कि ललिता कौन है, तब उसे ग़रीब के झोपड़े में रखना उसकी मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा के अनुकूल न होगा। ललिता इस विचार से अनमनी-सी मालूम हुई, पर बहुमत के आगे उसे अपना सिर नवाना पड़ा।

राजा साहब ने यह प्रस्ताव रक्खा कि जब तक ललिताकुँवरि की जायदाद उसे मिल न जाय, और उसका विवाह योग्य वर के साथ न हो जाय, वह राजा साहब की कोठी पर ही निवास करे। आज से राजा साहब ने उस कोठी का नाम जादूघर से बदलकर 'ललिता-भवन' रख दिया, और इस बात की प्रत्यक्ष घोषणा भी कर दी। उन्होंने कहा— "इस देवी ने अपने बल से जादू के भूतों को आते ही भगा दिया था, और जिस देवी के प्रताप से मुझे भूतों से छुटकारा मिला, उसी देवी को उस स्थान पर अब स्थापित करना चाहिए।"

सबने इस बात को स्वीकार किया। मेहतेजी और देवीसिंह के भी, जब तक ललिताकुँवरि वहाँ रहे, पास रहने का निश्चय हुआ। हाँ, जब ललिताकुँवरि ब्याह के बाद अपनी ससुराल चली जाय, तो मेहतेजी भी अपने गाँव जा सकते हैं। यह भी तय हुआ कि बाग़बान और उसकी स्त्री भी अपनी झोपड़ी में रहने के बजाय उसी कोठी में जहाँ नौकरों की जगह बनी है, रहें। नौकरानी ललिताकुँवरि के रहने तक उसकी सेवा में रक्खी जाय। बाद को डॉक्टर साहब के अस्पताल में चली जाय।

'ललिता-भवन' में आज रात को एक बड़ा भोज भी डॉक्टर साहब की ओर से किया जाना निश्चय हुआ। पर ललिताकुँवरि के अनुरोध पर कि अभी सारी बातें सर्व-साधारण में फैलाई न जायँ, यह तय पाया कि भोज तो हो, पर उसमें घर-ही-घर के लोग आमंत्रित किए जायँ।

दिन-भर रघुवीरसिंह ने मित्रों से मिलने और शहर की सैर करने में बिताया, और रात को भोज में सम्मिलित हुए।

भोज समाप्त होने पर ललिताकुँवरि वहाँ से हट नौकरानी के साथ दूसरे कमरे में चली गई। इन तमाम आकस्मिक घटनाओं से उसके कच्चे दिल पर असर होने से वह थक-सी गई थी। रघुवीरसिंह भी बाहर बाग़ में टहलने चले गए। शेष मंडली में ललिता के विवाह और

उसके लिये योग्य वर ढूँढ़ने की बातचीत होने लगी। मेहतेजी ने कहा—"अब तक तो यह भार मैं अपने ऊपर समझता था, पर अब यह सब आप लोगों के ऊपर है।" बाग़बान ने भी कहा—"मेहतेजी का कहना सही है, क्योंकि चाहे ललिता धनी हो गई हो, पर उसके माता-पिता या और कोई सगे-संबंधी जीवित नहीं, इसलिये यह काम आप लोगों को ही करना पड़ेगा।" बड़ी देर तक बहस होती रही। अंत में सर्व-सम्मति से यही निश्चय हुआ कि ललिताकुँवरि का विवाह रघुवीरसिंह से किया जाय। पर रघुवीरसिंह ऐसे कुल और जाति के हैं या नहीं, जिनके साथ ललिता ब्याही जा सके? ललिताकुँवरि को भी यह स्वीकार है या नहीं, और साथ-ही-साथ रघुवीरसिंह भी इससे अनुमति रखते हैं या नहीं? ये सब प्रश्न उठे। पर सबका फ़ैसला हो गया। कहा गया, रघुवीरसिंह अच्छे घराने के हैं, इसमें तो ज़रा भी संदेह नहीं। फिर जाति-उपजाति का आजकल इतना ख़याल नहीं किया जाता, और इसलिये इस बारे में ज़्यादा खोद-भेद की आवश्यकता नहीं। ललिता-कुँवरि की अनुमति के बारे में समयानुकूल मेहतेजी कारवाई कर लें, और रघुवीरसिंह की अनुमति डॉक्टर साहब प्राप्त कर लें। अभी इन बातों के लिये बहुत समय है, क्योंकि विवाह इस मामले के ख़त्म होने पर ही हो सकता है, और फिर शायद ललिता के ताऊजी ने वसीयतनामे के जो ट्रस्टी मुक़र्रर किए हैं, उनकी भी स्वीकृति लेनी होगी।

यह सोचकर कि जब सब लोग मेरे ही निमित्त भोज में आए हुए और कमरे में बैठे हैं, तब मेरा इस तरह अकेले आकर अलग बैठना उचित नहीं। ललिता इस कमरे में आ रही थी। रघुवीरसिंह के मन में भी यही आया कि जब सब लोग भीतर बैठे बातचीत कर रहे हैं, तो मेरा इस तरह अकेले बाग़ में फिरना सभ्यता के विरुद्ध है, इसलिये वह भी बाहर से भीतर दरवाज़े में घुस रहे थे।

दोनो ने उस मंडली की इस घोषणा को सुन लिया कि 'ललिता-कुँवरि का विवाह रघुवीरसिंह के साथ किया जाय,' और इस शुभ संवाद से दोनो के चेहरे, ख़ुशी के मारे, जगमगा उठे।

एक ही समय भीतर आने की वजह से दोनो की दरवाज़े पर मुठ-भेड़ भी हो गई, और दोनो की चार नज़रें भी हो गईं, मानो दोनो ने विना पूछे-ताछे ही, आँखों-ही-आँखों से, इस विषय में एक दूसरे को स्वीकृति दे दी।

अबकी बार जो ये लोग भीतर आए, तो दोनो ज़रा झिझकते-से थे, और दोनो की आँखें लज्जा से भरी नीचे को झुकी थीं। ललिता सकुचाई हुई, धोती का पल्ला कुछ नीचे किए, मेहतेजी की आड़ में बैठ गई, मानो वह अब रघुवीरसिंह के सम्मुख बैठना पसंद नहीं करती। रघुवीरसिंह भी कुछ झेंपे हुए-से राजा साहब और डॉक्टर साहब के पीछे जा बैठे, जैसे उन्हें भी सबके सामने ललिता की ओर देखने में कुछ झेंप-सी आती हो।

फिर सबने एक स्वर से यह कहा—"भगवान् इन दोनो को चिरायु करें।" और बिदा ली। ललिता अपने कमरे में घुस गई, और पलँग पर सो गई। मेहतेजी और देवीसिंह उसी कमरे के बाहर बरांडे में जाकर सो गए। बाग़बान और उसकी स्त्री ने अपनी कोठरी में, और नौकरानी ने अपनी पुरानी जगह आराम किया।

---

(३७)

मेरी आँख झपकी थी एक पल,
वोहीं दिल ने कहा, कहीं उठके चल;
दिले बेक़रार ने आनकर
मुझे चुटकी लेके जगा दिया।

—[illegible]

राजा साहब डॉक्टर साहब के साथ मोटर में बैठ महल चले गए। रास्ते में दोनो में क्या बातचीत हुई, सो राम जाने, पर घर पहुँचते ही ये अपने-अपने कमरे में जा सो रहे।

सुबह उठते ही रघुवीरसिंह ने अपने काग़ज़ समेट अटैचीकेस में रक्खे, और कपड़े तथा सामान जमा करने एवं बिस्तर बाँधने के लिये नौकर को आज्ञा दे बाहर चाय पीने आ गए। डॉक्टर साहब पहले ही से वहाँ मौजूद थे। ख़ूब ख़ुशी-ख़ुशी चाय उड़ी। रघुवीरसिंह ने घड़ी की ओर देखकर कहा— "गाड़ी में सिर्फ़ आध घंटा बाक़ी है।" डॉक्टर साहब अंदर कपड़े पहनने चले गए, और नौकर से जल्द मोटर ला मेह-मान साहब का सामान उसमें रखने को कहते गए।

दस मिनट के भीतर ही दोनो मोटर में बैठ रेलवे-स्टेशन को रवाना हो गए। वहाँ पहुँच डॉक्टर साहब ने स्टेशन का एक ही चक्कर लगा पाया था, और रघुवीरसिंह बुकस्टाल पर दो-तीन दैनिक समाचार-पत्र और कुछ पुस्तकें ही रास्ते में पढ़ने को ख़रीद पाए थे कि रेलगाड़ी प्लेटफ़ार्म पर आ गई। नौकर ने तब तक क़ुली से गाड़ी में सामान रखवा दिया था। ये दोनो अपने डब्बे के सामने खड़े हो बातें करने लगे। इतने में गार्ड ने फिर सीटी बजाई, और हरी झंडी दिखाई। रघुवीरसिंह डब्बे में चढ़ गए। डॉक्टर साहब ने उनसे गाड़ी चलते-चलते हाथ मिलाया, और कहा—"परमेश्वर तुम्हारी मनोकामना पूरी करें।"

* * *

रघुवीरसिंह सीट पर बैठ दैनिक पत्र पढ़ने लगे। थोड़ी देर बाद वह पत्रों को पुस्तकों के पास पटककर लेट गए, एवं किसी ध्यान में मग्न हो गए।

बंबई पहुँच वह अपने बँगले पर पहुँचे, और स्नान कर कपड़े बदले, फिर टेलीफ़ोन कर सॉलिसिटर साहब के दफ़्तर से दर्याफ़्त किया

कि बड़े साहब हैं या नहीं। मालूम हुआ, वह दफ़्तर ही में हैं, और इतने दिन उनके तार या चिट्ठी का इंतज़ार करते रहे हैं। उन्होंने एक टैक्सी ली, और दफ़्तर जा पहुँचे। सारा क़िस्सा कह सुनाया, और उनकी दी हुई विलायत की चिट्ठी वापस कर, गले से तावीज़ उतार उसमें का पत्र भी उनके हाथ में दिया। साहब वह काग़ज़ पढ़ फड़क उठे। जल्दी से टाइपिस्ट को बुलाया, और उसकी तीन कापी टाइप करा असल काग़ज़ रघुवीरसिंह के हवाले कर दिया। रघुवीरसिंह ने फिर उसे तावीज़ में रख तावीज़ को गले में पहन लिया।

साहब ने इनका बहुत शुक्रिया अदा किया, और दो हज़ार रुपए के नोट, इस मामले की जाँच के मेहनताने के हिसाब में, दिए। बिदा करते समय उन्होंने कहा—"बाक़ी रुपए मामले का फ़ैसला होने पर आपको भेंट किए जायँगे।"

साहब को यह क्या मालूम था कि इन दो हज़ार रुपए के अलावा एक अमूल्य वस्तु पहले ही यह अपने मेहनताने में हड़प कर चुके हैं।

---

(३८)

पर सपूत जिस कुल में होगा,
उसका समय आप-ही-आप—
पलट जायगा, यश फैलेगा,
मिट जावेगा सब संताप।

—रामचरित उपाध्याय

डेढ़ महीने बाद सॉलिसिटर साहब की चिट्ठी रघुवीरसिंह को सुबह की डाक से मिली, जिसमें उन्होंने जिस क़दर जल्द हो सके, दफ़्तर में आकर मिलने के लिये लिखा था। यह उसी रोज़ दफ़्तर गए, क्योंकि

इन्हें भी उस मामले की लगन लगी हुई थी। सॉलिसिटर साहब ने विलायत से आए सारे काग़ज़ात सामने रख दिए। उसमें ऊधोसिंह का असली वसीयतनामा भी मौजूद था, और उन ट्रस्टी लोगों के नाम भी थे, जो इसकी तामील कराने के ज़िम्मेदार बनाए गए थे।

सब काग़ज़ पढ़कर रघुवीरसिंह ने साहब से देर तक बातचीत की। आख़िर में साहब ने कहा—"बस, तो अब इस मामले की तस्दीक़ अदालत के ज़रिए करा देनी चाहिए, ताकि वसीयतनामे का अमल फ़ौरन् शुरू हो जाय।"

साहब ने मशविरा दिया कि अगर तमाम गवाहान को बंबई बुला लिया जाय, तो यहाँ फ़ैसला जल्द हो सकेगा। रघुवीरसिंह ने भी इसे पसंद किया। रघुवीरसिंह को साहब ने उनकी तरफ़ से सबको बुलाने के लिये तार देने को कहा, और उन्होंने वहीं बैठकर तार लिख दिए। साहब ने अपने दफ़्तर में उन्हें फ़ौरन् तारघर भिजवाने का हुक्म दिया। इस पार्टी के आ जाने पर मिलने का वादा कर रघुवीरसिंह ने साहब से रुख़सत ली।

इधर साहब ने अपने यहाँ के बैरिस्टर को इस मामले की ज़ाब्ता तकमील और अदालत में ज़रूरी काररवाई करने के लिये टेलीफ़ोन से बुलाया। उधर रघुवीरसिंह इस पार्टी को कहाँ ठहराया जाय, इस इंतज़ाम में लगे।

* * *

हाँ, एक बात कहने को रह गई। ऊधोसिंह ने कुल मिलाकर १० लाख रुपए की जायदाद छोड़ी थी, जिसकी सारी तफ़सील वसीयतनामे में दर्ज थी।

* * *

रघुवीरसिंह ने सबको अपने बँगले पर ठहराना उचित न समझा। न-मालूम मुक़द्दमे में कितने रोज़ लगें। राजा साहब और डॉक्टर साहब

को भी शहादत में बुलाना पड़ा था। शायद उन्हें इस छोटे-से बँगले में सुविधा न हो, और मेहतेजी भी पुराने ख़याल के होने से शायद ललिताकुँवरि के साथ इनके यहाँ ठहरना पसंद न करें। इन्हीं सब विचारों से रघुवीरसिंह ने अपने एक मित्र की बड़ी कोठी, जो उनके बाहर चले जाने से इस समय ख़ाली थी, माँगकर उसमें इन सबके ठहरने का इंतज़ाम करना चाहा। शाम तक यह सब इंतजांम कर सके। अपने नौकरों के अलाहदा रहने का भी इंतज़ाम कर दिया। यह सब करके मोजिनी के यहाँ आकर चाय पी, और मोटर में बैठ हैंग ग गार्डन हवा खाने चले गए। वहाँ से जब घर लौटे, तो डॉक्टर साहब का तार मिला कि सब-के-सब एक्सप्रेस-गाड़ी से आ रहे हैं।

इस तरह सब काम-धंधों से निबट, खाना खा वह सो रहे।

*　　　　*　　　　*

सुबह के वक्त, सारी पार्टी बंबई के सेंट्रल स्टेशन पर आ पहुँची। रघुवीरसिंह मोटरें ले पहले ही स्टेशन पर आ पहुँचे थे। सबको मोटरों में बिठा, सामान लाने का इंतज़ाम नौकरों के सुपुर्द कर ठहरने की जगह चले। आज इन्हें ललिताकुँवरि के, गाड़ी से उतरकर मोटर में बैठने के समय तक, अच्छी तरह दर्शन भी नहीं हुए।

इस तरह उन्हें कोठी पर ठहरा, भोजन आदि की व्यवस्था कर रघुवीरसिंह ने जाकर सॉलिसिटर साहब को इनके आने की ख़बर दी। बैरिस्टर साहब को भी वहीं टेलीफ़ोन से बुला लिया गया। आज बृहस्पतिवार था। मुक़द्दमे की तारीख़ अगले सोमवार की लगी थी, इसलिये बैरिस्टर साहब ने कहा—"चलिए, मैं आपके साथ चलकर किस-किस गवाह को क्या-क्या बयान देना होगा, समझा दूँ। फिर सबको लेकर सोमवार के दिन हाईकोर्ट आ जाइएगा।"

रघुवीरसिंह इन्हें साथ ले कोठी पर आए। वहाँ बैरिस्टर साहब ने सबको क्या करना और किस तरह बयान देना होगा, समझाया।

इसमें बहुत देर लगी, शाम हो गई। बैरिस्टर साहब ने सबसे 'गुड-ईवनिंग' कर रुख़सत ली।

रघुवीरसिंह ने तब इन लोगों से सैर को जाने के लिये कहा। मगर सब बुरी तरह थके हुए थे, इसलिये सबने आराम करना निश्चय किया। रघुवीरसिंह अपने बँगले टहलते ही चले आए, और वे लोग खाना-पीना करके आराम करने की फ़िक्र में लगे।

शुक्रवार, शनिवार और रविवार को सारी पार्टी ने बंबई की सैर की। ऐसा कोई मुख्य स्थान बचने न पाया, जो इन्होंने देखा न हो।

राजा साहब और डॉक्टर साहब तो पहले कई दफ़ा बंबई आ चुके थे, पर इस पार्टी के साथ घूमने-फिरने में जो लुत्फ़ आया, वह पहले कभी न आया था।

मेहतेजी, देवीसिंह और बाग़बान भी पार्टी में शामिल थे—साफ़-सुथरे और क़रीने के कपड़ों से सुसज्जित।

सोमवार को हाईकोर्ट में मुक़द्दमा हुआ। जिन-जिनके बयानात होने थे, हुए। उसी रोज़ फ़ैसला होकर वसीयतनामे पर तस्दीक़ की गई, और ललिताकुँवरि क़ानूनी तौर पर वारिस क़रार दे दी गई। बैरिस्टर और सॉलिसिटर साहब ने ललिताकुँवरि को बधाई दी।

पार्टी के सब लोग अपने-अपने घर वापस आए। सॉलिसिटर साहब दफ़्तर आकर विलायत तार दे ही रहे थे कि इतने में राजा साहब और डॉक्टर साहब, रघुवीरसिंह को लिए, आ विराजे। रघुवीरसिंह अलग रहे। साहब इनसे धीरे-धीरे बातचीत करने लगे।

थोड़ी देर बाद साहब ने कहा—"अच्छा हुआ, जो आप लोग अभी मुझसे मिल लिए। मैं विलायत तार भेज ही रहा था। इस बात को भी उसी में दर्ज किए देता हूँ। वहाँ के सॉलिसिटर हो सब ट्रस्टियों से मिलकर उनकी स्वीकृति ले लेंगे। मैं अपनी ज़ाती सिफ़ारिश भी लिखे देता हूँ।"

इसके बाद ये लोग वापस चले आए। रघुवीरसिंह को यह पता न लगा कि इस तार में ही उनके विवाह के बारे में ज़ाब्ते की काररवाई की गई है।

रात को सबने मिलकर भोजन किया। रघुवीरसिंह को भी वहीं भोजन करने के लिये रोक लिया गया।

भोजन के पश्चात् मेहतेजी ने ललिताकुँवरि की ओर से और डॉक्टर साहब ने रघुवीरसिंह की ओर से एक दूसरे के संबंध में स्वीकृति दे डाली, और इस प्रकार आज इन स्वजनों की पंचायत के सामने ठाकुर रघुवीरसिंह का संबंध कुमारी ललिताकुँवरि से होना निश्चित हो गया।

दूसरे रोज़ ही सॉलिसिटर साहब ने डॉक्टर साहब और राजा साहब को बुलाकर, विलायत से जो स्वीकृति या तार आया था, बताकर उसकी नक़ल उन्हें दे दी, और कहा—"मिस्टर रघुवीरसिंह को मेरी तरफ़ से भी मुबारकबाद दे दीजिएगा।"

वहाँ से आ फिर पंचायत जमी, और वह तार पढ़कर सुनाया गया। इस समय ललिताकुँवरि और रघुवीरसिंह, दोनो वहाँ मौजूद रक्खे गए थे। बस, सगाई पक्की हुई, और विवाह का दिन तथा जगह निश्चय करना रह गया।

रघुवीरसिंह के आग्रह पर यह तय पाया कि विवाह धूमधाम से नहीं, बल्कि बड़ी सादगी से किया जाय। मेहतेजी के आग्रह पर यह भी मान लिया गया कि लड़की का मँड़वा तरनतारन-गाँव में ही रोपा जाय, वहीं बरात आवे, और लड़की वहीं से बिदा की जाय। राजा साहब ने गाँव में बरात ठहरने और विवाह का सारा इंतज़ाम करने का भार अपने ऊपर लिया। एक महीने के भीतर ही जो दिन-मुहूर्त ठीक हो, उसमें विवाह किया जाना भी क़रार पा गया।

दूसरे दिन की गाड़ी से सब पार्टी फिर लखनऊ लौट आई।

ललिता ने मेहतेजी से कहकर शीघ्र ही अपना तरनतारन जाना पक्का किया। राजा साहब ने भी डेरे-तंबू और सारा लवाज़िमा भेजने का इंतज़ाम कर दिया।

---

(३६)

सरल - हृदय होते ग्रामवासी किसान;
श्रम - रत, श्रम - जीवी, सच्चरित्र - प्रधान।
सुख - युत रहते वे अल्प में तुष्टि मान;
लघु धन-महिमा में, सद्‌गुणों में महान।

—लोचनप्रसाद पांडेय

*　　　*　　　*

ऐसे लोगों में नहीं हम, जो कहें औ' न करें;
मर्द जो कहते हैं, वह करके दिखा देते हैं।

—आसफ़

*　　　*　　　*

गर लाख बरस जिए, तो फिर मरना है;
पैमानए - उम्र एक दिन भरना है।
हाँ, तोशए - आख़िरत मुहैया कर ले;
ग़ाफ़िल, तुझे दुनिया से सफ़र करना है।

—अनीस

एक रोज़ सुबह उठते ही तरनतारन-गाँववालों ने एक बड़ी मोटर को गाँव में घुसते देखा। यह पहला ही मौक़ा था, जब मोटर ने गाँव में दर्शन दिए थे। देखते-देखते तमाम लड़के-लड़कियाँ उसे देखने को इकट्ठे हो गए। गाँव-भर में ज़रा देर में मोटर आने की ख़बर फैल गई। रज्जो

भी मटकती-चटकती, धीरे-धीरे इधर ही आने लगी। देखते-देखते मोटर से सबसे पहले मेहतेजी उतरे, फिर देवीसिंह और पीछे ललिता। सब लड़की-लड़के चिल्ला उठे—"अरे भैया, वो लल्लो आ गई, और हवागाड़ी में आई है।"

मेहतेजी गाँव में घुसे, और जाते-जाते सबको राम-राम, प्रणाम करते जाते थे। ललिता भी किसी मोड़ी से गले से मिलती, किसी मोड़ी को हाथ से अपनी तरफ़ घसीटती मेहतेजी के पीछे-पीछे चली जाती थी। रज्जो आती हुई रास्ते में मिल गई, और गले से लिपटकर ख़ूब रोई। बोली—"लल्लो, तू कहाँ चली गई थी?"

इस तरह बड़ी देर में मेहतेजी, देवीसिंह और ललिता अपनी कुटी पर पहुँचे। ललिता ने कुटी को प्रणाम किया, और देवीसिंह ने झट ज़मीन साफ़ कर ललिता के बैठने को चारपाई बिछा दी। सारा गाँव-का-गाँव इन्हें देखने और इनसे मिलने के लिये उमड़ आया।

ठाकुर साहब भी हाथ में गुड़गुड़ी लिए आए, और मेहतेजी के हाथ में दे दी।

सारी छोकरियों ने घुमड़कर ललिता को घेर लिया, और इस तरह आपस में घंटों बातचीत चली।

*　　　*　　　*

राजा साहब ने कैसा इंतज़ाम किया, विवाह किस तरह हुआ, धूमधाम कैसी रही, गाँववालों को जेवनार कैसी दी गई, इत्यादि बातें कहकर हम आपका वक्त लेना नहीं चाहते। केवल इतना कहे देते हैं कि शुभ मुहूर्त में रघुवीरसिंह का विवाह ललिताकुँवरि से हो गया। और, साथ-ही-साथ देवीसिंह का विवाह ललिता की सहेली राजेश्वरी (हमारी पूर्व-परिचित रज्जो) से हो गया। यह संबंध किस तरह हुआ, और इसमें कोई आपत्ति आई या नहीं, इसका भी ज़िक्र करके हम कहानी बढ़ाना नहीं चाहते। हमारी परिचित पार्टी के अलावा और

बहुत-से लोग भी लखनऊ और बंबई से इस शुभ कार्य में सम्मिलित होने आए थे। नवाब सआदतअलीखाँ भी इस शादी में शरीक हुए।

❀ ❀ ❀

राजा साहब के बारे में एक बात कहना और रह गई। वह यह कि उनसे उनके दोस्त वकील साहब सारे क़र्ज़दारों का निबटारा करने का वादा कर गए थे। बड़े परिश्रम और माथापच्ची के बाद उन्होंने यह तय किया कि राजा साहब पचास हज़ार रुपए तो फ़ौरन अदा करें, बाक़ी दस हज़ार रुपए सालाना की क़िस्त कर दें। राजा साहब ने भी इस निबटारे को स्वीकार कर लिया। उनका कहना था कि जागीर से पचास हज़ार रुपए साल आमदनी की अब भी उन्हें उम्मीद है। अब उन्होंने अपना ख़र्च बहुत घटा डाला है, इसलिये दस हज़ार रुपए साल तो वह अवश्य ही अदा करते जायँगे, बल्कि ज़्यादा बच गया, तो और ज़्यादा देते जायँगे। पचास हज़ार नक़द रुपए की फ़िक्र ज़रूर थी। उन्होंने अब आइंदा नया क़र्ज़ लेने की क़सम खा ली थी। कोठी बेचने की बातचीत चल रही थी। इनका कहना था कि उसमें डेढ़ लाख रुपए की लागत लगी है, पर कोई पचास हज़ार से ज़्यादा नक़द क़ीमत देने को तैयार न था।

विवाह के बाद ललिता और रघुवीरसिंह फिर इसी कोठी में आकर ठहरे। इसी समय उसके बिकने की ख़बर शहर में फैल रही थी। ललिता को जब यह मालूम हुआ कि उसके दाम कोई पचास हज़ार से ज़्यादा नहीं लगाता, तो उसने रघुवीरसिंह से कहा कि वह जाकर राजा साहब से मिलें, और अगर वह इसे मुझे देना चाहें, तो मैं साठ हज़ार में लेने को तैयार हूँ। रघुवीरसिंह ने जाकर सकुचाते हुए यह बात राजा साहब से कही। राजा साहब ख़ुद रघुवीरसिंह के साथ कोठी पर आए, और ललिता-कुँवरि से प्रार्थना करने लगे कि वह इस कोठी को भाई की तरफ़ से, बहन के विवाह के उपलक्ष में, भेंट-स्वरूप स्वीकार करें।

ललिता ने कहा—"भाई साहब ! मुझे मालूम है, आप इस समय किस तरह रुपए की कठिनाई में हैं, इसलिये मैं आपको आर्थिक कष्ट में देख यह भेंट स्वीकार नहीं कर सकती। मेरे पास धन है, इसलिये जो क़ीमत दूसरे देते हैं, वह आप मुझसे लेकर इसे मुझे दे दीजिए। लागत के मुक़ाबिले में यह क़ीमत कुछ भी नहीं, इसलिये आप इसे मुझे भेंट देना ही समझिए।"

ललिता ने पचास हज़ार रुपए का चेक लिख ज़बरदस्ती राजा साहब के हवाले किया। इस तरह राजा साहब के क़र्ज़ का निबटारा हो गया, और 'ललिता-भवन' श्रीमती ललिताकुँवरि के नाम अदालत से रजिस्ट्री हो उनकी जायदाद बन गया।

रघुवीरसिंह के साथ बंबई जाने के पहले ललिता ने दो-चार महत्त्व के काम और कर डाले। एक तो एक लाख रुपए का ट्रस्ट तरन-तारन-गाँव के लिये मुक़र्रर किया, जिससे वहाँ के लोगों को ज़मीन ठीक करने, सामाजिक दशा सुधारने और शिक्षा प्राप्त करने में सुविधा हो, और गाँव की सब तरह की उन्नति की जाय।

दूसरा काम पचास हज़ार रुपए का दूसरा ट्रस्ट मुक़र्रर करके किया, जिससे डॉक्टर साहब के ज़च्चाख़ाने को दूना बढ़ाकर उसे स्थायी रूप दिया जा सके।

बाग़बान और नौकरानी के रहने के लिये पाँच-पाँच हज़ार रुपए से मकान ख़रिदवा दिए।

---

(४०)

सायंकाल हवा समुद्र-तट की नैरोग्यकारी महा ;
प्राय: शिक्षित, सभ्य लोग नित ही आते इस से यहाँ।

बैठे हास्य-विनोद - मोद करते सानंद वे दो घड़ी ;
सो शोभा उस दृश्य की हृदय को है तृप्तिकारी बड़ी ।
—कन्हैयालाल पोद्दार

एक रोज़ अपोलो-बंदर के गेट ऑफ़ इंडिया पर बैठे हुए दो सुंदर युवक-युवती बातचीत कर रहे थे ।

युवती कह रही थी—"आज का आपका भाषण तो बड़ा ही प्रभावशाली हुआ । सब सुननेवाले आप पर मोहित हुए जान पड़ते थे । गवर्नमेंट-पक्ष के लोग भी आपकी बात का समर्थन कर रहे थे । आप कोई जादूगर तो नहीं हैं ?"

युवक ने हँसते हुए उत्तर दिया—"जादूगर न होता, तो एक नज़र में ही तुम-सरीखी शक्तिशालिनी देवी को अपने वश में कैसे कर सकता था ?"

यह युवक हमारे श्रीरघुवीरसिंहजी थे, और युवती हमारी सुपरिचित श्रीमती ललिताकुँवरि । आपस में किसी बात पर विवाद चल रहा था। श्रीमतीजी अपने पति से गाँव जाकर अपनी बालपन की सखी राजेश्वरी और भाई देवीसिंह से मिलने का अनुरोध कर रही थीं, और पति महोदय कह रहे थे कि उन दोनों को ससुर मेहतेजी-समेत बंबई ही बुला लिया जाय । श्रीमतीजी इस पर राज़ी न होतीं, और गाँव जाने के लिये ही ज़िद करती थीं । इसके बाद न-जाने क्या-क्या और मीठी-मीठी बातें दोनो में हुईं । आख़िर हमने युवक को यह कहते अवश्य सुना—"बस, रहीं गँवारिन ही !"

यह सुन युवती तनककर उठ बैठी, और भौंहें तानकर कुछ उत्तर दिया । पर युवक ने प्रेम से हाथ पकड़कर कहा—"गँवारिन-शब्द से तुम बिगड़ क्यों खड़ी हुईं ? क्या तुम गाँव में नहीं रहती थीं ? और क्या तुम्हारा पालन-पोषण गाँव में नहीं हुआ ? बस, तो गाँव में रहनेवाले पुरुष को गँवार और स्त्री को गँवारिन कहकर संबोधन करने में

कौन-सा दोष है ? शायद आजकल जैसे शहर के लोगों ने गँवार का अर्थ मूर्ख बना लिया है, वही तुमने भी समझा। असल में यह बात नहीं। शहर के रहनेवालों ने ही अपने को ही सभ्य और निपुण समझ, अहंकार के मद में गाँव और देहात में रहनेवाले ग़रीबों को मूर्ख समझ इस शब्द का यह अर्थ बना दिया है। ख़ैर, यदि मेरी देवी इससे कुपित हो गई हैं, तो मैं संशोधन करने के लिये तैयार हूँ, और कहूँगा—श्रीमती ललिताकुँवरि नागरी।

दोनों हँस पड़े।

सम्मतियाँ

वेंकटेश्वर-समाचार—लाला रामजीदास वैश्य हिंदी के पुराने लेखक हैं, और व्यापारिक तथा ग्वालियर-राजकीय राजनीति से पूर्ण संबंध रखते हुए भी आप साहित्य-सेवा के लिये समय निकाल ही लेते हैं। स्वर्गीय ग्वालियर-नरेश का आप पर बहुत विश्वास था। वह अपने निजी धन के लिये जो ट्रस्ट बना गए हैं, उसमें भी लाला रामजीदास को बहुमान-मंडित पद प्रदान कर गए हैं। इस समय भी आप सर्वत्र आदर और सम्मान के भाजन बने हुए हैं। ऐसे व्यक्ति जब साहित्य-सेवा में इतनी रुचि रखते हैं, तो वे धन्यवाद और बधाई के अधिकारी हैं।

लेखक ने पुस्तक की भाषा सरल रखने और जटिलता न आने देने का पूर्ण प्रयत्न किया मालूम होता है। कथा-वस्तु की कल्पना के सौंदर्य और विषय-वर्णन की शैली के प्रवाह ने पुस्तक को बहुत रोचक बना दिया है। कहीं-कहीं स्थानीयता की पुट भी परिलक्षित होती है। पर उससे उपन्यास का माधुर्य कुछ और अधिक हो गया है। उपन्यास की चरितनायिका वास्तव में गुदड़ी में छिपा हुआ लाल है। बहुत बड़े घर की लड़की है. उसके पिता और उनके बड़े भाई भारत में व्यापार में हानि उठाकर इँगलैंड चले जाते हैं। पर्याप्त धनोपार्जन के बाद माता-पिता अपनी एकमात्र पुत्री-सहित भारत के लिये प्रयाण करते हैं। दैव की विचित्र गति से मार्ग में तूफ़ान आता है, और लड़की के माता-पिता तथा अनेक यात्री डूब जाते हैं। पर पुराना नौकर लड़की-सहित बच जाता है। अपने गाँव आकर वह उसे अपनी लड़की के तौर पर ही पालता है। इस स्थिति में हम लड़की को गँवारिन नहीं कह सकते। दुराचारी रईस और उसके कर्मचारियों की कुदृष्टि लड़की पर पड़ती है, और वे उसे फाँस ले जाते हैं, पर वह धर्म पर दृढ़ रहती है, और अंत में दुराचारियों को भी सुमार्ग पर ले आती है।

उपन्यास में कल्पना-सौंदर्य भी है, जासूसी ढंग भी है, मनोरंजकता भी है, और सदुपदेश भी। इसमें भेड़ के रूप में भेड़ियों के चरित्रों का चित्रण भी सुंदरता से किया गया है, और भेड़िए के रूप में भेड़ों का भी। उपन्यास का अंत होता है, तो सारी ग्रंथियाँ खुल जाती हैं। दुराचारी सदाचार को स्वीकार करते हैं। संसार पर लड़की के संभ्रांत-कुलोत्पन्न होने की बात प्रकट होती है। उधर उसके ताऊ भारी संपत्ति छोड़कर लंदन में स्वर्गवासी होते हैं, और अपनी भतीजी के पक्ष में बिल कर जाते हैं। एक यशस्वी प्राइवेट जासूस बंबई की एक योरपियन सॉलिसिटर कंपनी के संकेत पर लड़की को खोज निकालता है, और मुसीबतों से बचाकर नौका को किनारे लानेवाले इस जासूस कन्या का विवाह हो जाता है। अतुल संपत्ति के स्वामी होकर दोनों परोपकार-परायण जीवन व्यतीत करते हैं।

पुस्तक में रोचकता बढ़ानेवाला कई प्रकार का सम्मिश्रण है। आप इसे सामाजिक उपन्यास कह सकते हैं, आप इसे जासूसी उपन्यास भी कह सकते हैं, आप इसे कल्पना-साम्राज्य से संबंध रखनेवाला उपन्यास भी कह सकते हैं, और सबसे अंत में आप इसे हिंदू-संस्कृति के अनुकूल आदर्श स्त्री का चरित्र सामने रखनेवाला, स्त्रियोपयोगी, शिक्षाप्रद उपन्यास भी कह सकते हैं।

पं० उदित मिश्र— 'ललिता', नाम की पुस्तक संभवतः श्रीरामजीदास वैश्य की पाँचवीं रचना है। जैसा मैंने आपकी प्रथम पुस्तक की समालोचना करते हुए लिखा था कि आपका अनुभव बहुत बढ़ा-चढ़ा है, वह ख़्याल इस पुस्तक के देखने से और भी पुष्ट हो गया है। पहली पुस्तक की समालोचना करने से पहले मैं वैश्यजी को बिलकुल नहीं जानता था, पर उसी निष्काम सेवा का फल है कि आपने यह पुस्तक मेरे पास भेजी है।

दो भाई साथ ही विलायत गए। एक अपनी स्त्री, लड़की और नौकर के साथ घर लौट रहा था, रास्ते में जहाज़ डूबा। बाप ने लड़की के गले में एक तावीज़ बाँध दिया था, जिसमें बहुमूल्य रत्न और एक पत्र था। उस पत्र द्वारा नौकर को अधिकार दिया गया था कि वह माता-पिता के अभाव में लड़की का पिता समझा जाय, और पालन-पोषण का सारा भार उसी पर हो।

मेहतेजी नौकर का नाम था, और ललिता लड़की थी। रास्ते में जहाज़ डूबा मालिक-मालकिन डूबे। मेहतेजी गाँव के रहनेवाले थे। सब जगह घूम आए, पर रहे ढाक के तीन पात ही। ललिता सयानी हुई। मेहतेजी का एक लड़का देवी था। घर का काम-धाम देखने-लायक़ देवी हो गया।

मेहतेजी के यहाँ काफ़ी सरकारी मालगुज़ारी लगती थी। कई साल का बक़ाया लगान था। नवाब का तहसीलदार मालगुज़ारी तहसील करने के लिये गाँव में आया। वह बड़ा ज़ालिम था। मेहतेजी ने देवी को भेजा और कहा कि देखो, चाहे जितनी सख़्ती हो, तुम टस से मस मत होना, और तहसीलदार से मुहब्बत के साथ पेश आना।

देवी ने बहुतेरा बचाया, पर तहसीलदार को क्या पड़ी थी, उसको भलमनसाहत से क्या वास्ता? उसने देवी को बहुत तकलीफ़ दी। इस अवसर पर लेखक ने जो ज़ुल्म का ख़ाका खींचा है, वह पढ़ते ही बनता है। मेहतेजी ने अपनी आँखों ख़ून भरकर लड़के की दशा देखी। गाँव-भर के नर-नारियों ने त्राहि-त्राहि की, पर ज़ालिम को दया से क्या काम? मेहतेजी की सारी अनुनय-विनय बेकार गई। ललिता ने अपने गहने बेचकर इस बला से पिंड छुड़ाना चाहा। पर इसी समय तहसीलदार की निगाह ललिता पर पड़ी। उसने अपने मालिक नवाब को खुश करने के लिए उनके कानों में लड़की की खूब-सूरती की आवाज़ पहुँचाई। नवाब भला आदमी था। उसने

तहसीलदार की इस हरकत पर उसे नौकरी से बर्खास्त कर दिया। तहसीलदार दूसरे ज़मींदार के यहाँ पहुँचा। वह रँगा सियार था, ऊपर से देश-भक्त और भीतर से बड़ा दुराचारी और नीच था। पुराने पापियों की मित्रता हुई, और ललिता गाँव से भगा लाई गई।

सती-साध्वी देवी ललिता ने अपने उज्ज्वल चरित्र से सबकी आँखें खोलीं, सारे पापियों का उद्धार किया। ललिता का चाचा विलायत में था। मरते समय उसने लाखों की संपत्ति का वसीयतनामा ललिता के नाम लिख दिया, अपने धन के लिये ट्रस्ट नियत कर दिया। बंबई के सी० आई० डी० ने सब बातों का पता लगाया। उसे ललिता मिली, और अंत में उसी के साथ लड़की का गठजोड़ हुआ।

लेखक बड़े अनुभवी जीव हैं। तजुर्बेकार लोगों का प्लाट कभी सीधा नहीं हो सकता। यही वजह है कि 'ललिता' की भी कथा ऐसी ही है। कोई विषय इसमें नहीं छूटा। विलायत-यात्रा, जहाज़ का अनुभव, डॉक्टरों की लीला, ज़मींदारों की चालबाज़ी, कारिंदों की करतूत, ग़रीब दुखियों का सरल हृदय, गाँववालों का मेल-जोल, मुक़द्दमेबाज़ी का नज़्ज़ारा, कहाँ तक लिखूँ, बहुत-सी बातें एक ही जगह दे दी गई हैं। और, अंत में इससे सदाचार की शिक्षा ख़ूब मिलती है। सारे पापड़ बेलने के बाद मनुष्य को किताब पढ़ने का लाभ मिल जाता है।

हिंदी के सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखक, हास्यरसावतार पं० जगन्नाथ-प्रसाद चतुर्वेदी—आपकी 'ललिता' को देखा, और भली भाँति देखा। बहुत अच्छी है। आपको इस रचना के लिये बधाई है!

हिंदी के प्रख्यात कवि और लेखक श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त—कहानी वर्णन-प्रधान और अच्छी जान पड़ी। पढ़ने में मन लगा। ऐसी मनोरंजक कहानी पर मैं आपको बधाई देता हूँ!
